तत्व ज्ञान

तत्व-ज्ञान

महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज, फतेहगढ़

संकलन कर्ता : श्रीमती अमिता सक्सेना
: श्रीमती किरण गुलियानी

श्री रामचन्द्र मिशन, शाहजहांपुर (उ. प्र.)

प्रथम हिन्दी संस्करणः ११०० प्रतियां (१९९८)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य - 35.00 रुपये
US $ 1.5

प्रकाशकः
प्रकाशन विभाग
श्री रामचन्द्र मिशन
शाहजहांपुर (उ. प्र.)
भारतवर्ष

मुद्रकः
वैरा प्रिंटर्स
पांडव नगर दिल्ली- ९२

विषय सूची

१.	सम्पादकीय	VII
२.	प्रस्तावना	VIII
३.	लाला जी महाराज	३
४.	आध्यात्मिक चेतना	२१
५.	ध्येय	५९

सम्पादकीय

किसी ब्रह्म निष्ठ महात्मा के प्रति सच्ची श्रद्धांजली यही है कि हम उस महान महात्मा के आरम्भ किये हुये कार्य को पूर्ण करने में व्यवस्त हो जायें जो वह अपने जीवन काल में पूर्ण न कर सके। वास्तव में यह कार्य तो प्रकृति की सहायता से स्वयं पूर्ण हो सकता है पर संसार के भूले भटके प्राणियों के मार्ग दर्शन के लिये मानों एक सहारा है। जो प्राणियों को इस मार्ग पर चलने को प्रेरित करता है। उन्होंने लिखा है "जो काम मुझसे न पूरा हो सका उसको पूरा करना तुम्हारा काम है और यही मेरी गुरु दक्षिणा के वास्ते असली और बेबहा नकदी है।" (लालाजी महाराज) अतः हम सब के लिये एक बहुत बड़ा मार्ग दर्शन है, इससे हमारे जीवन का कल्याण संभव है मानव जीवन के लक्ष्य का मार्ग दिखा कर उनको कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाले सदगुरु को मात्र मानव मानना उनकी अवहेलना होगी। वह तो स्वयं परमात्मा का ही मानो रूप विस्तार है।

संपादक
प्रकाशन विभाग
श्री राम चन्द्र मिशन
शाहजहाँपुर (उ. प्र.)

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक जिसका नाम तत्व-ज्ञान है इसका मकसद उन अभ्यासियों तक हमारे लाला जी महाराज की हिदायतों को पहुंचाने का है। जिससे कि हर अभ्यासी को सच्चे दिल से प्रकृति की वास्तविकता पहचानने का अवसर प्राप्त हो और वह सहजता से ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर चल सके। ये श्रद्धांजलि उस महान महात्मा के लिये है जो प्यार से लालाजी महाराज के नाम से जाने जाते हैं। जिन्होंने प्राणाहुति को इस तरीके से नियमबद्ध किया जो मनुष्य के जीवन को सफल बना कर ईश्वर प्राप्ति के पथ की ओर ले जाने में सहायक है।

इस पुस्तक को आप सब के सामने लाने में लाला जी महाराज के पौत्र दिनेश कुमार सक्सेना जी का काफी योगदान रहा है। बिना उनकी सहायता प्रस्तुत पुस्तक का संकलन करना मुमकिन न था। श्री राम चन्द्र मिशन उनका बहुत आभारी है। इस पुस्तक के संकलन में श्रीमती अमिता कुमारी सक्सैना और श्रीमती किरण गुलियानी का महत्वपूर्ण योगदान है। दोनों ने अपना अमूल्य समय देकर प्रस्तुत पुस्तक को आपके सामने लाने में सहायता की है।

प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि जो अभ्यासी ईश्वर प्राप्ति के इच्छुक हैं। वह प्रस्तुत पुस्तक पढ़ कर यह जान जायेंगे कि कैसे अपने आपको ढालना चाहिए और कैसे नियमों का पालन करना चाहिये। जिससे कि उन्हें अपने को ईश्वर के नजदीक लाने में सहायता मिले।

लालाजी महाराज एक ऐसी शख्शीयत हैं जिसकी दूसरी मिसाल इस धरती पर न होगी जिनका नाम महात्मा राम चन्द्र जी महाराज था जो फतेहगढ़ के निवासी थे। इस शख्शीयत ने अपने एक शिष्य (जिनका नाम महात्मा रामचन्द्र जी महाराज ही था,

वह शाहजहाँपुर के निवासी थे और उन्हें लोग प्यार से बाबूजी महाराज पुकारते थे) को एक वरदान दिया जिसे मद्देनजर रख कर बाबूजी महाराज ने एक ऐसी पद्धति (System) बनायी जो सहज-मार्ग पद्धति के नाम से विश्व-विख्यात है। यह एक ऐसा सहज-मार्ग है जिसके नियमों का पालन करने से तथा निरन्तर साधना करने से रूहानियत में तरक्की बहुत आसान महसूस होने लगती है और दूसरा वरदान यह भी दिया जिससे कि हर सच्चे नियमित अभ्यासी को गारन्टी (Guarantee) दी कि इस पद्धति द्वारा हर सच्चा अभ्यासी इसी जीवन काल में जन्म तथा मृत्यु के आवागमन के चक्र से छुटकारा पा सकेगा। अगर वह इस संस्था का सच्चा अभ्यासी होगा।

सहज-मार्ग का सच्चा अभ्यासी कैसा होना चाहिए और उसे आध्यात्मिक उन्नति के लिये क्या-क्या नियम पालन करने चाहिएं। यह सब तत्व-ज्ञान में दर्शाया गया है। अगर कोई अभ्यासी इन नियमों का पालन करता है तो उसे ऐसी कोई अड़चन नहीं आयेगी जो रूहानियत की तरक्की में बाधक हो। हमारी उस मालिक से प्रार्थना है कि जो अभ्यासी नियमित रूप से सहज-मार्ग पद्धति को सच्चे दिल से अपनाता है उन सबको दिव्य-शक्ति का साक्षातकार हो।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक तत्व-ज्ञान, जिसका संकलन लालाजी महाराज के साहित्य को आधार मान कर किया गया है, आप सबको पसन्द आयेगी। यह पुस्तक अपने आप में सक्षम होगी।

उमेश चन्द्र
अध्यक्ष
श्री राम चन्द्र मिशन
शाहजहाँपुर (उत्तर-प्रदेश)

लाला जी महाराज

लाला जी महाराज

"अगर परमार्थ और ईश्वर प्रेम के संस्कारों के उदय होने का वक्त आ गया है, तो सोहबत और सतसंग तलाश करने की जरुरत अव्वलीन है।"

जैमुनी ऋषि ने कर्म की और व्यास ऋषि ने ज्ञान की प्रधानता पर जोर दिया। जिनको क्रमशः कर्मसूत्र और ब्रह्मसूत्र या वेदान्त सूत्र का नाम दिया गया। वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति से पूर्व अभ्यासी को इन दोनों पथों से होकर चलना पड़ता है। वेदान्त को समझने के लिये अनुभव ज्ञान की जरुरत होती है, जो मानव में विद्यमान है। आत्मा के ऊपरी आवरणों को आध्यात्मिक साधना से हटा कर ज्ञान की वास्तविकता तक पहुंचा जा सकता है।

ब्रह्म विद्या सर्वोपरि, यदि शूद्र हू पर होय।
तऊं उसे अपनाइए, जाति वर्ग कुल खोय।।
जाति पांति पूछे ना कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।

ब्रह्म विद्या सर्वोपरि है। इसकी प्राप्ति वर्ग, जाति, कुल को खोने पर ही हो सकती है। इस विद्या में जात-पात का विशेष महत्व नहीं है। जो ईश्वर को याद करता है वही ईश्वर का होता है।

जो इस ब्रह्मकार वृत्ति को जानते हैं और जानकर उसे बढ़ाते हैं, वे सत पुरुष धन्य हैं। वे ही तीनों लोकों में वन्दनीय, पूज्यनीय होते हैं। वही मनुष्य के वास्तविक गुरु हैं।

खोज हारनू ढूँढ ले ढुँढन हारनू ढूँढ ले।।

उन मानवों का बेड़ा पार हो जाता है जो ब्रह्म वृत्ति को जानकर गुरु के आश्रय में पहुंच जाते हैं वह मनुष्य की जानकारी बढ़ा कर जानते हैं और जानकर बढ़ाते हैं वे धन्य हैं। अध्यात्मिक के मार्ग पर अपने सहारे से ले जाते हैं।

सुख देवे दुख को हरे, दूर करै अपराध।
कहे कबीर वह कब मिलै, परम स्नेही साथ।।

मानव का भाग्योदय जब होता है जब ईश्वर की कृपा दृष्टि उस पर पड़ती है और वह सुख देता है दुखों को दूर करके और अपराध को भी माफ कर देता है। कबीरदास जी के अनुसार ईश्वर जब मिलता है जब परम स्नेही साथी मिल जाता है। अर्थात् जब सतनाम, सत गुरु और संतसंग मिल जाता है। जगत में अनेक आडम्बर अनेक रामों की चर्चा की जाती है सन्त कबीर ने कहा है:-

जगत में चार राम हैं, तीन राम व्योहार।
चौथा राम निज सार है, ताका करो विचार।।
एक राम दशरथ घर डोलै, एक राम घट-घट में बोले।
एक राम का सकल पसारा, एक राम निर्गुण से न्यारा।।
कौन राम दशरथ घर डोलै, कौन राम घट-घट में बोले।
कौन राम का सकल पसारा, कौन राम निर्गुण से न्यारा।।
आकार राम दशरथ घर डोलै, निराकार घट-घट में बोले।
बुन्द राम का सकल पसारा, निरा लम्ब सब ही से न्यारा।।
यह राम वास्तव में सतनाम है। और वह भी पाचवां पद है।

सतनाम सतनाम प्राकृतिक। यह प्रत्येक जीव (हर प्राणी) के अन्तःकरण में गूंज रहा है।

जहां सत का संग हो अर्थात् सत्-ईश्वर है संग साथ अर्थात् वह सतसंग है।

यह ईश्वरीय उपासना का अत्यंत सुन्दर स्वरूप है। जैसे सतनाम से आध्यात्मिकता की प्राप्ति होकर वास्तविकता से दीदार होता है वहीं सतसंग तत्वज्ञान से वास्तविकता की समझ आती है।

सतगुरु वह हस्ती है जिस के प्रभाव से सतनाम और सतसंग की तरफ आत्मा मुड़ जाये।

ईश कृपा बिना गुरु नहीं, गुरु बिना नहीं ज्ञान।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं, गावहिं वेद पुराण।।

ईश्वर की कृपा बिना गुरु नहीं मिलता और बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त करना कठिन व असंभव है। वेद पुराणों में लिखा है कि ज्ञान के बिना आत्मा को पहचानना उतना ही मुश्किल है जितना कि ईश्वर को।

गुरु की बानी-बानी गुर।
बानी बीच अमृत सारा।।

गुरु की वाणी गुड़ के समान मीठी है और गुरु की वाणी में अमृत का सार छुपा है। उसे ज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है।

सदगुरु ईश्वर और मनुष्य को जोड़ने वाली कड़ी है। उसी के माध्यम से मनुष्य ईश्वर तक पहुंच सकता है, केवल गुरु की कृपा ही ऐसी शक्ति है जो मनुष्य के जीवन पथ की उलझनों, कठिनाइयों से उसको छुटकारा दिला सकती हैं। और ईश्वर से मनुष्य की दूरी को कम कर सकती है।

सतगुरु मेरा सूरमा करे शब्द की चोट।

मेरे सद्गुरु महान हैं वह अपने शब्दों की चोट से मानव को उचित, अनुचित का ज्ञान करा देते हैं।

दिव्य-शक्ति का नाम देवता या ईश्वर है। प्रत्येक प्राणी में दिव्य-शक्ति का वास होता है, अर्थात ईश्वर का अंश ही प्राणी में आत्मा के रूप में हमेशा

विद्यमान है। पर उसका ज्ञान आम मनुष्य को नहीं होता है। लेकिन जब मनुष्य को अपने गुरु देव का सहारा और ईश्वर की इच्छा या कृपा प्राप्त हो जाती है तभी मानव उस लक्ष्य की ओर अपना ध्यान दे पाता है। जो मालिक कृपा से मानव की आध्यात्मिक छुपी शक्ति को प्रकट करने में सहायक होती है। सिद्ध शक्तियों का महत्व आध्यात्मिक शक्ति से बहुत कम है। इस धरती पर अवतारों का जन्म इन्सानों की कोख से ही हुआ है। मानव में जब किसी किस्म की शक्ति या योग्यता उन्नति कर लेती है तो वंह विशेष शक्ति और योग्यता उस मानव में भिन्न प्रकार की शक्ति बन कर प्रकट हो जाती है।

उपनिषद कहते हैं कि सर्वप्रथम वास्तविकता थी, और वह छुपी हुई थी। उसी वास्तविकता ने जब स्थूलता प्राप्त की तो वह पुरुष कहलाया। यह पुरुष मानव ही था। जो शरीर में रहता है वही पुरुष है। शरीर में आत्मा हर समय कैद रहती है। पुरुष व्यक्ति से बहुत ऊपर सत्यपुरुष ही काबिज है। एक अर्थ में मालिक रचना करने वाला है। वही अधिष्ठाता है उस के सहारे संसार और संसार के सारे क्रिया-कलाप चलते हैं। जिस प्रकार सूरज के चारों तरफ किरणों का प्रकाश बिखरा रहता है, हीरे के चारों और चमक मंडराती रहती है, उसी प्रकार सतपुरुष के नीचे जो कुछ है उस का नाम आदिमाया है। वह हर समय चक्कर खाती रहती है। इस चक्कर में जब सत्पुरुष का साया पड़ता है तब माया के मोल से मिलकर वह एक विशेष प्रकार के व्यक्तित्व में बदल जाता है और उसकी हस्ती वैसी ही होती है जैसी इंसान के साये की होती है। यही साया सत्पुरुष में प्रगट होने के कारण एक विशेष प्रकार का व्यक्ति बन गया और वही शक्ति जो माया में थी वहीं इसमें भी विद्यमान हो गयी। इसी माया के कारण ही अहंकार रूपी तत्व के दर्शन मानव को होते हैं। अभिमान अभि (मोल) मान (मन को जोड़ना) या मानव। जिस तरह कोई व्यक्ति किसी वयोवृद्ध के साथ सम्बन्धी का रिश्ता जोड़कर उस जैसा बनना चाहता है और असल में वह वैसा नहीं है। उसी तरह उसे छाया पुरुष मान कर सतपुरुष के हम-जात ने सतपुरुष की हस्ती को लेकर अपनी हस्ती का इकरार किया और कहा कि मैं हूं और उसके अहंकार तत्व यानी हस्ती में जहूर

का माद्दा पैदा हुआ। इस हम-जात यानी साया पुरुष का नाम काल, या काल पुरुष है।

यानी कि चक्कर खाती हुई माया के पेट से इसका जन्म हुआ। और यहीं से जीवन व मृत्यु के चक्र का प्रारम्भ हुआ। और आवा-गमन के इस चक्र के जाल में मानव फंस कर रह गया।

इसी काल पुरुष ने अपने आप को दो भागों में बांट दिया। एक भाग पुरुष या मानव कहलाया और दूसरा भाग प्रकृति। पुरुष या मानव का अर्थ रूह यानि आत्मा से लगाया जाता है। और प्रकृति से अर्थ माया का। इन दोनों से काम लेने के लिये ईश्वर को सतपुरुष की सहायता से काम लेना पड़ा। प्रकृति का नाम माया है और वह माद्दा ही है। और वह ही अनेक तत्वों की जड़ है। प्रकृति प्रधानता से यह तत्व इस तरह से पैदा हुऐ कि सतपुरुष का अंश यह काल पुरुष है। जो पहले किसी चीज को धारण करने की योग्यता रखता हो वह प्रधान है। फिर यह ही प्रधानता किसी को अपने अन्दर रख लेने या धारण करने के बाद प्रकृति कहलाने लगती है। पैदायश के सिलसिले में जब कोई चीज पैदा नहीं होती बल्कि प्रकट होती है। इस प्रकट होने के सिलसिले में जो पैदायश होने के अर्न्तगत आते हैं उनका ज्ञान उस समय होने लगता है। अपनी हस्ती का बोझ अहंकार तत्व है। इसी अहंकार की दूसरी सूरतें मन बुद्धि और चित्त है। यह आपस में एक-दूसरे से मिले हुए हैं। चित्त में चिन्तन करने की शक्ति है। मन में मनन करने यानी चिन्तन करने की और सोचने की शक्ति है। अहंकार अपने अस्तित्व का प्रदर्शन मात्र है। बुद्धि के निर्णय दृढ़ता प्रदान होते हैं। इन चार तत्वों की प्रधानता प्रकृति में उस समय प्रकट होती है जब काल पुरुष को अपने में पाने का भान होता है। अहंकार से ही शब्द प्रकट होता हैं शब्द प्रकट होते ही आकाश तत्व को पैदा करता है। शब्द से स्पर्श पैदा होता है जो छूने का तत्व है। इससे वायु का भी आभास होता है। वायु में आवाज तो आकाश का भाग है। हवा या वायु के मंथन से रूप तत्व निकलता है, जो अग्नि का रूप धारण करता है। इस अग्नि तत्व की भी तीन विशेषताएं हैं:-

शब्द, स्पर्श, रूप। शब्द आकाश का, स्पर्श वायु का और रूप अग्नि का गुण है। इसी रूप से चखने का असर निकलता है जो जल अर्थात् पानी का रूप धारण करता है। इसमें चार गुण शब्द, स्पर्श रूप और रस होते हैं।

शब्द आकाश का, स्पर्श वायु का, रूप अग्नि का और रस उसका स्वयं का अस्तित्व है। अन्त में इसी तत्व के मंथन से पृथ्वी तत्व का प्रादुभाव हुआ जो पांच तत्वों से बना है। इस प्रकार प्रकृति में सूक्ष्म और स्थूल तत्वों की विद्यमानता रहती है।

सत पुरुष की काया इन तत्वों में से किसी एक से भी नहीं बनी है वह चेतना से बनी है। चेतना भी एक तत्व है। जो ज्ञान तत्व कहलाता है। वह सबका आधार है। जिस तरह चिराग के रोशन होते ही रोशनी और अंधकार अलग-अलग हो जाते हैं उसी तरह वास्तविकता का आवरण हटते ही चेतना और माया अलग-अलग हो जाते हैं।

सतलोक में सत्पुरुष की माया विशेष चेतना तत्व की बनी होती है। फिर ब्रह्म लोक या नीचे उतर कर खास चेतना से जो व्यक्तित्व बनता है वह काल पुरुष कहलाता है। फिर इस काल पुरुष के मंडल से जो माया का पर्दा नीचे गिरता है वह महामूल यानी स्थूल तत्व आकाश, वायु अग्नि जल पृथ्वी का पैदा करने वाला होता है, और नीचे की रचना में तमाम जीवों के शरीर इन्हीं तत्वों के बनते हैं।

ब्रह्म की पैदाईश पार ब्रह्म तत्व से हुई जो प्रकृति का प्रथम तत्व है। उपनिषदों ने मायाशील तत्व को ब्रह्म माना है। काल पुरुष को शुद्ध ब्रह्म माना जाता है। पार ब्रह्म शुद्ध इसलिए कहा गया है कि वह शुद्ध माया से सम्बन्ध रखता है। और ब्रह्म को मायाशील ब्रह्म इसलिए कहा जाता है कि वह माया के मेल से संसार की रचना करता है। पार ब्रह्म चूंकि सत् पुरुष का अंश है। इसलिए उसकी तरह वह अपनी ही नीचे की रचना का आधार है। और उसके सहारे यह ब्रह्म उसका प्रतिबिम्ब बना हुआ त्रिगुणात्मक माया की सहायता से काम करता रहता है।

परमात्मा की कृपा को अगर शब्दों का आवरण पहना कर अगर गुण-गान किया जाय तो शब्द भले ही अलग-अलग हों पर उनके अन्दर छिपा भाव एक ही होगा।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, इसका प्रभाव हर पल दुनिया में आये परिवर्तन से प्रमाणित होता है। जैसे हर खिंचाव और सिमटाव के साथ ठहराव भी है, बढ़ाव और घटाव के साथ आनंद भी है। आने और जाने की प्रक्रिया के साथ कयाम भी है। और कोई चीज पैदा होती है तो उसका अन्त भी होता, पर उसके साथ उसमें ठहराव भी बीच में आता है। और सकून अर्थात् चैन एक ऐसी मानव स्थिति है जिसका वर्णन करना कठिन है। ऐसी ही इन्सानी फितरतें हैं कभी खुशी तो कभी दुःख कभी अशान्ति तो कभी शान्ति, कभी निर्बलता तो कभी ताकत, कभी गरीबी तो कभी अमीरी, कभी स्वास्थता तो कभी बीमारी। इन दोनों के बीच की अवस्था भी साथ-साथ चलती है। इसी कारण प्रसन्नता में अप्रसन्नता का भय छिपा रहता है उसी प्रकार शान्ति में अशान्ति का भय विद्यमान है, भय इसलिये है कि प्रसन्नता का दुःख, शान्ति का अशान्ति और बीमारी का कमजोरी पहलू है। जैसे कि आवश्यकता से अधिक प्रसन्नता में आंसू निकल आते हैं वैसे ही आवश्यकता से अधिक दुःख में भी अनायास आंसू आ जाते हैं।

वास्तव में मानव आध्यात्मिकता के ज्ञान से कोसों दूर हो चला है। इसका कारण आधुनिक वातावरण और शिक्षा का प्रभाव है। परन्तु फिर भी प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ईश्वर तक पहुंचने के लिये, आध्यात्मिकता का सहारा लेना ही पड़ेगा। इसके लिये पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त करना होगा, (mergence की हालत में) अपने आचरण पर विशेष ध्यान देना होगा। इसके लिये महान संत जो ब्रह्मलीन हो उसकी कृपा की आवश्यकता है। जो प्राणी को उसके जीवन लक्ष्य तक पहुंचा सके। इसके लिये गुरु की प्राणाहुति और उसके सतसंग की सहायता की भी आवश्यकता है। बिना सच्चे महान सद्गुरु की कृपा के प्राणाहुति प्राप्त करना और गुरु का सतसंग मिलना असंभव ही है।

इस मार्ग पर चलते हुए चाहे कितनी ही अच्छी स्थिति प्राप्त कर लें, पर फिर भी समय निकाल कर परिश्रम करके अगर कुछ समय सतसंग में बिताया जाय, तभी रूहानी (आध्यात्मिक) उन्नति सुचारु रूप से संभव है। क्योंकि कुछ पाने के लिये परिश्रम और समय तो देना ही पड़ेगा। फिर ईश्वर प्राप्ति के लिये किया गया परिश्रम बिना फल प्राप्ति सम्भव ही नहीं है। सतसंगों में व्यक्ति को अनुभव प्राप्त होता है, अपनी कमियों, गलतियों त्रुटियों का भी अनुभव होता है उनको सुधार कर लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग सुगम किया जा सकता है। अर्थात् आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग की बाधाओं को कुछ हद तक कम किया जा सकता है। अपने प्रतिदिन की दिनचर्या, व्यवसाय जीवन के हर क्षेत्र में यदि आध्यात्मिकता को महत्व दिया जाय या उसे उनके साथ जोड़ दिया जाय तो व्यक्ति अपने को आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलने के नियमों के अनुसार ढालकर अपने दोनों लोक, यह लोक और परलोक दोनों को सुधार सकता है। जिसमें जीवन लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग आसानी से खुल सकता है।

तत्वज्ञान, और आध्यात्मिकता का ज्ञान प्राप्त करना सरल नहीं है, पर यदि व्यक्ति में लगन है तो वह अपने जीवन के थोड़े से समय में तत्वज्ञान, आध्यात्मिक में अच्छी उन्नति कर सकता है। सृष्टि कर्ता की कृपा ही व्यक्ति को उस मार्ग पर चलने में सहायक होती है। पर यदि उससे हट कर हम उस सृष्टिकर्ता के उत्पत्ति व सहारे के कानून की बातों में उलझ जायें तो हम भटक ही जायेंगे। शायद ही कोई ऐसा बिरला होगा जो भेद को समझ सके। अर्थात् इस आध्यात्मिकता के तत्वज्ञान के विशाल समुद्र की विशालता को समझ सके। इस कारण उचित यही है कि तत्वज्ञान की विशेष बातों का ज्ञान प्राप्त करके अनुभव से इस मार्ग पर चला जाय। इस ज्ञान के अथाह समुद्र में भटकने से बचने के लिये अपनी समझ की शक्ति से बाहर की बातों में न उलझा जाय। शायद ही कोई ऐसा बिरला होगा जो इस भेद को समझ सके अर्थात् इस अथाह समुद्र की गहराई को नाप पाये। इस कारण आवश्यक यह है कि जीवन की मोटी-मोटी बातों को जो हमारे सम्मुख नजर आतीं हैं, उन पर गौर किया जाय कि पृथ्वी पर

पांव रखने से पूर्व हम कहां थे। माता के गर्भ में नाड़ियों की जंजीरों में लिपटे उल्टे लटक रहे थे, कुछ नाड़ियों की सहायता से भोजन व हवा पहुंच रही थी मादा एक कैद में मां के रक्तोपालित इस जीव का एक मात्र कोख ही ठिकाना था पर उसका सम्बन्ध वास्तविकता अर्थात् ईश्वर से था।

इस संसार में जन्म लेते ही जीव का अपनी असलियत अर्थात् ईश्वर से सम्बन्ध टूट जाता है और सांसारिक क्रिया-कलापों से नाता जुड़ जाता है। और प्राणी उसी में उलझ कर रह जाता है। कई जन्मों से गुजर कर प्राणी मानव देह प्राप्त करता है, इस जीव का वापसी जड़ से चेतनता का प्रतीक है। जिस प्रकार बीजारोपण करने के कुछ समय बाद उसमें कोपलें, पत्तियां, टहनियां, फूल और फल अपने-अपने समय पर आना प्रारम्भ कर देते हैं। इस प्रथम अभिव्यक्ति को तमोगुण माना जाता है। यह तमोगुण जीव में पिछले जन्म से दबे पड़े रहे थे। दूसरे शब्दों में इस हालत को तबाई हालत कहते हैं। इस हालत में अक्ल व दुनियादारी का आवरण नहीं चढ़ा होता है। बालक की इस दशा को दुनियादारी के शब्दों में बालहट का नाम दिया गया है। कुछ समय के बाद तबई हालत पलटा खाती है एक नयी जिन्दगी की तरफ। यह हालत इखलाकी हालत कहलाती है। यह स्थिति इच्छाओं की पसन्द नापसन्द, इज्जत बेइज्जत का ज्ञान करा देती है। यह स्थिति रजोगुणी भी कहलाती है। इसमें मानव तबई हालत का इखलाख व इच्छा व बुद्धि का जामा पहन चुका होता है। जहां पर दौड़ लगी होती है अच्छे हालात को पाने की आशा में यह दौड़ लम्बी भी हो सकती है, पर कभी-कभी तीसरी राह भी मिल जाती है, जिसे आध्यात्मिकता (रूहानियत) का मोड़ भी कह सकते हैं। इस अवस्था को सतोगुणी प्रधान अवस्था भी कहा जाता है। यह तभी नज़र आती है जब मानवीय (इन्सानी) आत्म (रूह) आराम व सकून चाहती है। अर्थात अपने वास्तविक गृह (ईश्वर के पास) की तरफ वापसी को जाना चाहती है। मानव ईश्वर की इच्छा में राज़ी व खुशी होना चाहता है।

मानव अपनी अनेक कमजोरियों से छुटकारा पाना चाहता है। अपनी अनके बाधाओं को पार करना व हवा की विरोधी धार में भी कश्ती चला कर खुदा को

पा लेना चाहता है, मानों इसी जीवन में ही अपने ईश्वर (रब) अपने परवर दिगार को पा लेना चाहता है, और एक ऐसे जिन्दगी बक्श (चश्में) तालाब से पानी पीना चाहती है जो उसके आवागमन या मृत्यु-जीवन के झंझट से छुटकारा पाने के द्वार में प्रवेश करवा दें। और एक ऐसी (रूह) आत्मा से मिला देता है जो कि कहते हैं पूर्व के इक्कीस जन्मों के फल से मिला देती है। तब कहीं जाकर किसी आत्मसाक्षात्कारी ब्रह्म निष्ठ महात्मा के दर्शन होते हैं। जो उसे अपनी उंगली थमा कर मार्ग दिखता है उसे उसके (रब) ईश्वर से दीदार करा देता है, जिससे मानव आवागमन के चक्कर या बन्धन से छूट जाता है।

जब तक दाता उसे गोद में न ले लेंवे तब तक मानव तबाई इखलाक की व रूहानी (अध्यात्मिक) जन्मों और मृत्यु के आवागमन के सिल-सिले में जकड़ा रहता है। यह आवागमन का चक्र कभी समाप्त नहीं होता।

एक महत्वपूर्ण मानव बनने के लिए इसी चोले को धारण करके मरना पड़ता है। यह चोला मृत्यु से पूर्व पहनना पडता है अर्थात् मानव शरीर रहते हुये भी मृत्यु को प्राप्त करना पड़ता है। एक महत्वपूर्ण इन्सान बनने की स्थिति पर पहुंचने से पहले तीन (हालतों) स्थितियों से गुजरते हैं। पहली स्थिति में वह महज एक इन्सान रहता है।

दूसरी स्थिति में वह पहली स्थिति से कुछ अच्छी स्थिति तक पहुंचता है। और तीसरी स्थिति में दूसरी स्थिति से कुछ बेहतर स्थिति में रहने पर भी वह काबिल इंसान की स्थिति तक नहीं पहुंच पाता। तीनों स्थितियों में उसे न जाने कितनी बार जिन्दगी और मौत के स्वाद चखने पड़ते हैं। और न जाने इस मार्ग पर चलकर कितनी और सीढ़ियां, जिन्दगी और मौत की चढ़ाई बाकी रह जाती है। काबिल इंसान बनने की स्थिति वह मामूली मौत है जिससे उसे इसी चोले में सभी चक्रों को पार कर ईश्वर से आत्म साक्षात्कार कर लेना है।

इस मामूली मौत की स्थिति से कुछ और आगे न जाने कितनी परतों को उतारना अभी बाकी है। आध्यात्मिक मानव की स्थिति पर पहुंच कर भी यह तय

कर लेना बाकी रह जाता है कि यह उतार-चढ़ाव, ठहराव आने, जाने आदि का आखिर भेद क्या है? डर इस बात का भी है कि जितनी गहराई से ऊंचाई तक जाने की हिम्मत और (काबिल इन्सान) आध्यात्मिक मानव की स्थिति तक पहुंचने की तीव्र इच्छा में थोड़ा दम भी लिया जाए ताकि कहीं अहंकार की परत न जम जाये। इसलिये थोड़ा ठहराव अनिवार्य है आगे के सफर की सफलता के लिये।

इस यात्रा में चलने और रुकने का आगे बढ़ने और ठहर जाने से उस समय तक तो हम सिर्फ इस निष्कर्ष पर ही पहुंच सकते हैं कि हम मंजिल पर पहुंचने के मार्ग में हैं दरमियानी मंजिलें हमारे ठहराव और विश्राम और आगे बढ़ने में सहायक है। इसके सिवा कुछ नहीं और फिर आगे मार्ग और भी सहज है।

जिन्दगी की इस राह पर चलते-चलते अपने आप को विषमताओं मलिनताओं व विपदाओं, सर्दी, गर्मी और कुछ अन्य आत्मिक, शारीरिक व भौतिक रूपी चोरों व ठगों से बचाव के लिए कुछ ऐसे प्रयत्न करने पड़ते हैं, जिससे कभी-न-कभी मंजिल के दर्शन हो जाऐं, और वह यत्न वह प्रत्यन्न जिनमें मानव या प्राणी सुरक्षित रहे। ताकि वह अपनी मंजिल के और निकट पहुंच सकें वह पथ या मार्ग कहलाता है। यह भी उसी का रहमों करम है कि उसने हमको अकेला नहीं रहने दिया है, ताकि हम अपनी ही कोशिश से आगे बढ़ते जायें। चूंकि वह स्वयं हाथ-पांव व जुबान नहीं रखता है फिर भी वह अपनों को राह दिखाने के लिए, अच्छे और बुरे का ज्ञान कराकर अपनी कृपा बरसाता है। और ऐसी प्रेरणा देता है कि नीचे से ऊपर चढ़ने में मानव सफल हो सके। और ऊपर और ऊपर से नीचे की तरफ गिरने से अपने आप को बचा सके। यह उसी की कृपा है कि वह मन बुद्धि चित्त अंहकार स्वास्थ ऐशो आराम सब बक्श देता है। इन सब को पाकर प्राणी चाहे गुमराह हो, असक्त हो या उसी में डूबा रहे यह भी उसी की ही इच्छा का परिणाम है। जिसकी रचना हमारे जन्म लेने से पूर्व ही हो चुकी होती है। यह भी पहले से ही निश्चित होता है कि मानव को कितनी मंजिलें अभी पार करना बाकी है।

रोजो शब ज़ेरे ज़मीं लोग चले जाते हैं।
ना मालूम तात्वक तमाशा क्या है?।।

महात्मा की कृपा हमेशा साथ रही है। यह मानव की फितरत ही उसे कभी भौतिकता में असक्त कर देती है। मंजिलें राह से भटका देती हैं या फिर कमल की तरह कीचड़ में निर्लेप रह कर मालिक की दयालुता का स्वाद चखा देती है। राह में ठोकर खाकर राही संभल जाये तो यह भी मालिक कृपा की ही एक और लहर है जो मौज बनकर उमड़ती है। जो खोए हुये राही को रास्ता तलाश करने को विवश करती है। विवश्ता प्रगट करके क्षमा मांगने को विवश करती है, और सही रास्तें पर लाकर खड़ा कर देती है।

तूफान और आंधी हमको न रोक पाये।
वो और थे मुसाफिर जो पथ से तौबा कर आये।।

सच्चे भक्त को तो मालिक स्वम् तलाशता है क्योंकि उनके हृदय का खिंचाव मालिक को उस पर ध्यान देने को मजबूर कर देता है क्योंकि जिज्ञासू भक्त तो मालिक को वैसे ही प्यारे हैं। सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना और सच्चे हृदय की लगन के प्रति उत्तर में मालिक कृपा बरसाता है, और उन्नति की राह पर प्रार्थी को लाकर खड़ा कर देता है। प्रेम और श्रद्धा भक्ति की सबसे अनमोल पूंजी है जो देर सबेर अथक पस्श्रिम से मंजिले मकसद तक पहुंचा ही देती है। कष्ट और परेशानियां थोड़ी सी बाधायें मात्र ही बन सकते हैं पर जब-

दिल में है, तस्वीरें यार की,
जब जरा गर्दन झुकाई देखली।।

यानी हृदय में जब मालिक की तस्वीर विराजमान है तो बस सर झुकाने का कष्ट करके ही देखी जा सकती है।

हमारे मालिक कई-कई जन्मों तक हमारा साथ नहीं छोड़ पाते, ना ही मानव उनसे दूर ही जा पाता है। इनको 'सनातन' कहा जाता है और हम इनको धारण किये बिना रह नहीं पाते इस लिये इनको धर्म का नाम दिया है। कोई भी ऐसे

विचार एसी धारणायें, ऐसे संस्कार जिनको धारण किये बिना नहीं रहा जाय उसे सनातन धर्म कहते हैं। इसमें संसार के सभी धर्म पथ व सम्प्रदाय आते हैं। पर जो धारणा विचार शक्ति लगन मालिक के दर्शन की, चिन्ता, मस्ती व प्यास जगा दे वह आध्यात्मिक है। पर जो जगत को स्वपन और हकीकत दोनों मानते हैं वह धर्म है।

मानव के इस धरती पर आने के बाद उसका व्यवहार व संस्कार ज्वार-भाटे के ज्वलन्त उदाहरण हैं। भौतिक संसार के सभी पहलुओं से ज्ञान बटोर कर स्कूल, कॉलिज की शिक्षा पाकर भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि यह ज्ञान की चरम सीमा है। यह आनन्द की चरम अवस्था है। इनको पाकर यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि मानव की सारी आवश्यकतायें जीवन की सारी इच्छाओं का अन्त हो गया है।

हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पर दम निकले।
बड़े निकले मेरे अरमाँ मगर फिर भी कम निकले।

जैसाकि पहले भी कहा गया है कि मानव के जन्म से पूर्व ही निश्चित होता है कि वह आध्यात्मिक मार्ग पर चलेगा या नहीं। मानव आन्तरिक सकून, मानसिक शान्ति प्राप्त कर सकेगा या नहीं। मानव को सकून को पाने के मार्ग पर चलना होगा। आन्तरिक चैन आन्तरिक शान्ति को पाने के मार्ग पर और मालिक के प्यार को पाने की इच्छा व व्याकुलता कम न हो जाये यह भी मालिक की कृपा का एक रूप है।

मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।

यही ज्ञान की (तलाश) खोज है। इसको ब्रह्म विद्या भी कहा जाता है। जीव का वास्तविक लक्ष्य तो मानसिक बेचैनी दूर करके सकून की हालत पर पहुंचना है। यह केवल हृदय और दिमांग का हेर फेर है और कुछ नहीं। वास्तव में आत्मा शुद्ध और अशुद्ध दोनों से कुछ भी नहीं और जब आत्मा की यह दशा है तो परमात्मा की तो बात और ही है।

दिल का हुजरा साफ कर, जान के आने के लिये।
ध्यान गैरों का मिटा, उसको बैठाने के लिये।।

स्थूल शरीर से ध्यान हटाकर सूक्ष्म की ओर यात्रा करना वास्तविक सफर है। बाहरी दुनियां से ध्यान हटा कर आन्तरिक, अन्तरात्मा की पहचान की ओर यात्रा ही सच्ची है जो मालिक की तलाश में हो जो आध्यात्मिकता की सहायता से सम्भव है। उपरोक्त शेर में सही स्पष्ट किया गया है।

शंकराचार्य जी ने कहा है कि हर एक धार्मिक समुदाय के दो प्राकृतिक हिस्से होते हैं।

(१) **तत्वज्ञान**
(२) **आचरण**

प्राणी को दोनों पर अमल करना चाहिये। पहले हिस्से में पिंड के ख्याल से परमेश्वर के पुजारी का फैसला करके मोक्ष का फैसला किया जाता है। दूसरे पहलू में मोक्ष प्राप्ति के साधनों व साधकों पर विचार किया जाता है।

वास्तव में परंब्रह्म परमात्मा ही शाश्वत् व शुद्ध रूप है। और मानव उसी ब्रह्म का एक अंश व विस्तृत रूप है। जैसे पानी की बूंद नदी का एक अंश मात्र है, वह नदी से अलग नहीं है उसी प्रकार सागर से नदी अलग नहीं है। वैसे ही आत्मा भी परमात्मा से अलग नहीं है। इसको समझे और बिना अनुभव किये मोक्ष प्राप्ति सम्भव नहीं। उसी प्रकार बिना चिन्तन शुद्धी के ईश्वर प्राप्ति संभव नहीं, और बिना ईश्वर प्राप्ति के मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं। मोक्ष प्राप्ति की इच्छा के साथ-साथ अपने अधिकार और कर्तव्य के साथ अपने उत्तरदायित्व को पूरा करना भी नितान्त आवश्यक है। मोक्ष प्राप्ति के लिये सन्यास लेना आवश्यक नहीं है। जितना प्राणी का अपने उत्तरदायित्व को निभाना। कर्मों का निर्वाह करते हुये ज्ञान में निष्ठा रखना परम धर्म है। जब तक कर्मों का सफर पूरा न किया जाय तब तक ज्ञान का अनुभव कठिन है।

जीव और जगत दोनों ही ईश्वर की सृष्टि हैं। सृष्टि कर्ता के निकट जाने के

लिये प्रेम, भक्ति और उपासना का मार्ग ही उचित है। ज्ञान प्राप्त करके उस पर आचरण करना एक दूसरे के पूरक है। अच्छा आचरण ज्ञान को प्राप्त करने में सहायक होता है। भक्ति में भगवान और भक्त दोनों उपस्थित हैं। मानव को बिना फल की इच्छा किये कर्म करते जाना चाहिए। फल देने की इच्छा ईश्वर पर छोड़ दो यह 'गीता' में भी कृष्ण भगवान ने स्वीकार किया है। विभिन्न संप्रदायों के ग्रन्थों ने ज्ञान, कर्म व जीव के विषयों पर विभिन्न शब्दों में अपने विचार प्रकट किये हैं पर सभी का सार यही निकलता है कि उन्होंने ब्रह्म को सर्वोच्च मानकर आत्मा का परमात्मा से मिलन ही पूर्ण आभिव्यक्ति माना है।

प्रत्येक प्राणी संसार में आकर माया, मोह के चक्कर में फंस जाता है। माया, मोह में फंसे जीव को ईश्वर की कृपा के बिना अपने जीवन का लक्ष्य अर्थात मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। मोक्ष का ज्ञान प्राप्त करने के लिये भी भक्ति और प्रेम ही एक मात्र उपाय है। सर्वप्रथम ज्ञान फिर कर्म और फिर भक्ति प्रेम जीवन का धर्म है। पर सारे 'धर्म के अन्त होने पर ही प्राणी में भक्ति, श्रद्धा, प्रेम उत्पन्न होता है जो प्राणी को ईश्वर की शरण में ले जाता है। और ईश्वर की स्वीकृति में ही अपनी स्वीकृति की भावना से जो भी कर्म किया जाता है उसमें समर्पण की ही भावना रहती है और यही वास्तविक भक्ति का रूप है।

जब-जब इस संसार में अन्धकार के बादल छाते हैं धर्म के आगे अधर्म का प्रभाव बढ़ता जाता है। राजा से रंक तक के विचार समानता पर बल देते हैं और समाज में जहरीली अधर्म की भावना फैला देते हैं। तब संत मत को प्रधानता या मान्यता मिलती है। उस समय संत धर्म की पुस्तकों की शिक्षा का ज्ञान उसे सम्मान दिलाता है। प्रकृति इस स्थिति में कानून को स्वम् अपने हाथ में लेकर, एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करती है जो ईश्वर की इच्छा से इस संसार की बदलती परिस्थितियों में कार्य करने की मशाल और दूसरे में शिक्षाओं की तलवार होता है। प्रकृति अपना कार्य करवाने के लिये विशेष शक्ति प्रदान करके (Spritual Personality) आध्यात्मिक मानव को पृथ्वी पर कुछ कार्य सौंपकर भेजती है। उसे अवतार का जामा पहनाया जाता है और उससे उस युग

का पूरा कार्य करवाया जाता है। युग की समाप्ति पर फिर समय की आवश्यकतानुसार नये मानव (Special Personality) का आगमन इस धरती पर होता है। यह (S.P.) विशेष योग्यता प्राप्त मानव हजारों वर्षों के लिये पृथ्वी पर आते हैं। उनके हर कार्य में प्रकृति उनका साथ देती है क्योंकि उनके साथ ईश्वरीय शक्ति होती है।

ईश्वरीय शक्ति की सहायता से ही नये युग की आवश्यकतानुसार पृथ्वी पर संत, महात्मा का अवतरण होता है जो उस युग की आवश्यकतानुसार कार्य करते हैं। प्राणी को उचित राह पर लाने के लिये प्यार, मुहब्बत, स्नेह से गुमराह अर्थात् पथ भ्रष्ट लोगों को उचित मार्ग पर लाने का प्रयास अपनी आध्यात्मिक शक्ति से करते हैं। प्राणी के आन्तरिक परिवर्तन के लिये साधना, अभ्यास व सत् चित्त आनन्द का पाठ पढ़ा कर साधारण से साधारण जीव के उद्धार करने में सहायक होते हैं।

ध्यान, स्मरण, भजन साधन बन जाते हैं। धर्म को प्राप्त करने से संत का संग सत् पथ पर प्राणी को ले जाता है। ऐसे महात्मा उन जीवों की सहायता करते हैं जो जीव अनेक जन्मों के बन्धनों के कष्टों को सह कर अपनी वास्तविक मंजिल की खोज में हैं। प्राणी की वास्तविक मंजिल मानव जन्म की सहायता से ही संभव है। क्योंकि मानव जीवन ही एक ऐसा माध्यम है, जिसकी सहायता से प्राणी सारे जन्म, जन्मों के संस्कारों को इस जीवन में भोगकर बार-बार के आवागमन के चक्कर से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। महान आत्माओं, सिद्ध पुरुषों को भी मोक्ष प्राप्ति के लिए मानव शरीर धारण करना पड़ता है। अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए हर प्राणी को मानव शरीर धारण कर अपने पिछले जन्म और इस जन्म के संस्कार, इच्छायें, ठोसता, मल, विकार सभी को शरीर से निकाल कर, शरीर को पवित्र करके मोक्ष प्राप्ति करना सम्भव है।

सत् संग अर्थात सत्य का साथ। सत्य कौन है? ''ईश्वर''। उसका साथ सतसंग कहलाता है। अर्थात् ईश्वर से सम्बन्धित सब सत्य है। सत्य का संग करने

वाला व्यक्ति सतसंगी होगा। सतसंगी का धर्म यम-नियम है। सतसंगी सतसंग करके आध्यात्मिक आनन्द उठाते हैं। असत्य भाव व विचार का त्याग यम कहलाता है। यम का अर्थ है त्याग। सत् भाव व विचार को धारण करने को नियम कहा जाता है। हृदय रूपी पात्र में असत्य भाव को त्याग कर सत्य शुद्ध, पवित्र विचार को हृदय में भरने को नियत्रंण कहते हैं।

साधु के धर्म- आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार व धारणा साधु के चार धर्म हैं। चित्त की चंचल वृत्तियों को विश्राम देकर शुभ विचार को हृदय में बैठाना आसन कहलाता है। श्वासों पर नियंत्रण कर उन पर बुद्धि का अधिकार प्राप्त कर श्वासों को स्थिर कर सकने की प्रक्रिया को प्राणायाम के अभ्यास द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वह योग व साधन साधु अपनाते हैं जिससे श्वासों को स्थिर करने की क्षमता उत्पन्न हो सकें यह प्रक्रिया प्राणायाम कहलाती है। चित्त की वृत्तियों को सब तरफ से हटा कर एक विशेष भाव पर टिका देना प्रत्याहार कहलाता है। शुद्ध भाव को हृदय में धारण करके एक ही भाव पर दृढ़ रहने को धारणा कहा जाता है। इन सब साधनों को मिला कर जब चित्त की वृत्ति आन्तरिक हो जाती है, उसे विध्यासन कहा जाता हैं जो चौथाधन है। बाबूजी महाराज के शब्दों में:-

"अब एक दर्जा हंसा का हैं जिसका अर्थ है 'सत्ता को गृहण करने वाला" हंसा शब्द् हनन् अर्थात् मारने वाले से निकलता है। जिसने बुरी इच्छाओं को मार छिपा या नष्ट कर दिया है। जिसमें सत रूह बन कर रहता है। वह हंस है, जिसका ध्येय साक्षात्कार करना है अच्छी तरह धारण करके तसब्बुर और गौर करने का नाम ध्यान है।

समाधि- ध्यान की गहरी दशा को समाधि कहते हैं। सम का अर्थ है मिला जुला हुआ, धि का भावार्थ धारण करना। अर्थात सत् से खूब मिलजुल कर उसी में डूब जाने को समाधि कहते हैं। भावार्थ यह हुआ कि असत्य को त्याग और सत को भली-भांति गृहण करना और उसी रूप में उसके वास्तविक स्वरूप को जागृत करना। जहां मैं का भाव न रहे। आत्मा परमात्मा के साथ साक्षातकार होने की अवस्था का भाव होना।

तन सुकाय पिंज कियो, धरे रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न वासना, बिना विचारे ज्ञान।।

ध्यान से ज्ञान उत्पन्न होता है ध्यान के बिना ज्ञान नहीं रह सकता है।

आध्यात्मिकता के क्षेत्र में जैसे-जैसे प्राणी आगे बढ़ता जाता है, आध्यात्मिकता में अधिक ऊंची अवस्थायें प्राप्त करता जाता है। इस मार्ग में चलने पर गुरु की सहायता की आवश्यकता बढ़ती जाती है। पुस्तकें वहां किसी काम की नहीं रह जातीं। पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित योगिक क्रियायें एवं साधनाएं अधिकतर भूमिका होती हैं। अर्थात् पुस्तकीय ज्ञान, प्राणी की मानसिक स्थिति पर आधारित रहता है। इस कारण प्राणी उचित अनुचित भावना से भटक सकता है। इसलिये प्राणी को पथ प्रदर्शक की सहायता की आवश्यकता होती है। सुयोज्ञ पथ प्रर्दशक की सहायता ही हमें उचित लक्ष्य की ओर ले जाती है।

महान गुरु आन्तरिक और बाहरी नियमों की पाबन्दी द्वारा अभ्यासी का मार्ग दर्शन करते हैं। मन-वचन और कर्म से जो उचित लगे उस गुरु मत को अपनाना श्रेष्ठ है। मन, बुद्धि, चित्त अहंकार बाहरी व आन्तरिक अभ्यास और ब्रह्मी व्यवहार में अपने को लगाए रखने को गुरुमत कहते हैं। ध्यान से प्राप्त प्रभाव से अधिकांश समय तक के लिये अपने में बनाये रखने के लिए प्रत्यन्त आवश्यक है। सतत् स्मरण यदि सच्चे हृदय से किया जाय अर्थात हर समय हर कार्य में गुरु का ध्यान करना आध्यात्मिकता की उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। सच्चे हृदय से यदि अनुसरण किया जाए तो गुरु का ध्यान सदैव हमारे हृदय में रहेगा। इस स्थिति से आन्तरिक दशा में और बाहर, सर्वत्र उनकी उपस्थिति का अनुभव होता रहेगा। इस प्रकार निरन्तर इस तरह के ध्यान करने से हम अपने बाहरी वातावरण के प्रभाव से कम प्रभावित होते हैं। उससे आन्तरिक उन्नति होने लगती है। आन्तरिक उन्नति के कारण हम असली लक्ष्य की ओर चलने लगते हैं।

◆ ◆ ◆

आध्यात्मिक चेतना

मनुष्य की आत्मा का तेज उसके हृदय कमल को खिलाकर परमात्मा के प्रेम से भर देता है। यदि हम प्रकृति के सूर्य की ओर देखें तो पाते हैं कि सूर्य में इतना प्रकाश और इतनी गर्मी भरी है कि वह सारे प्राणियों का जीवन आधार है। उसी प्रकार आन्तरिक जगत के सूर्य (आध्यात्मिक जगत) का यह तेज हमारी आत्मा का जीवन आधार क्यों न हो। प्रेम ही आध्यात्मिकता का सार है, मैत्री भाव चारों दिशाओं में फैले, करुणा, दया का प्रतीक है। प्रत्येक मानव को जो मोक्ष प्राप्ति का इच्छुक हो उसे अपनी सोई हुई चित्त वृत्तियों को जागरूक करके परमात्मा के सम्मुख उपस्थित होना है। जहाँ पर ज्ञान का विमल प्रकाश, तथा त्याग प्रेम की गंगा बह रही है।

महात्माओं, संतों के सम्मुख हृदय खोलकर बैठने से जो कुछ प्राप्त होता है वह हजारों लाखों वर्षों की कठिन तपस्या से भी प्राप्त नहीं हो सकता। मानव की ईश्वर प्राप्ति की लगन का एक मात्र फल यही है कि हमें किसी महान संत का आश्रय मिल जाय। मानव का मन जो वायु-पानी के समान चंचल है जिसको वश में करना अत्यन्त कठिन व दुष्कर है। वह पलभर में ईश्वर प्रेम में लीन हो जाता है और एक दिन वह समाधिष्ठ भी हो सकता है। जब उत्तम महात्मा या संत का सत्संग होता है तो महात्मा-संत के हृदय में अपने साधक को कुछ देने की तरंग उठती है वहीं साधक के हृदय में श्रद्धा, विश्वास के भाव उठने लगते हैं, तभी यह समझना चाहिये कि यह दुष्कर कार्य सुगम हो गया। यदि सूर्य निकला हो और हम अपने घर के सभी द्वार, खिड़कियां सभी बन्द रखें तो अन्दर अन्धकार

ही होगा क्योंकि प्रकाश के ज्ञान को प्राप्त करने के लिये हमें अपने हृदय के सारे कपटों को खोल कर रखना होगा जिससे ज्ञान का प्रकाश आसानी से जहां तक उसकी पहुंच की आवश्यकता है वहां तक पहुंच जाये। हमें जीवन भर ईश्वर का और उनके जीवों का सेवक समझना चाहिये। और हर कार्य ईश्वर की आज्ञा समझ कर सेवा भाव से करना चाहिये। और जो प्राणी हमारी सेवा स्वीकार करे उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिये, उसे आधीनता या नौकरी न समझना चाहिये। यही आध्यात्मिकता का सार है। सब कुछ मालिक का है वह मालिक हमारा गुरु है वही प्रभु हम सब के दाता हैं।

नम्रता ही मानव जीवन का प्रमुख अंग है। नम्रता से सांसारिक व आध्यात्मिक सभी कार्य आसानी से हो जाते हैं। नम्रता से हम ईश्वर से ईश्वरीय ज्योति पाते हैं। नम्रता में विनय है, प्रेम है, सेवक बनने का रहस्य भी छिपा है और नम्रता से मानव गौरव और महानता भी प्राप्त कर सकता है। जिसने भी नम्रता को अपने जीवन का एक अंग बना लिया समझो उसने ईश्वर प्राप्ति की राह में अपने कदम बढ़ा लिये। वह नम्रता से अवश्य मालिक को प्राप्त करने में सफल होगा। जिसके हृदय में विनम्रता, प्रेम होता है, वहां भाव का सागर उमड़ पड़ता है। ईश्वरीय प्रकाश हृदय पर छा जाता है। उस मानव के लिये सम्पूर्ण जगत ही ईश्वरमय हो जाता है। वह सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में प्राणी दिखायी पड़ते हैं। अपने-पराये की भावना का अन्त हो जाता है। मानव के हृदय में त्याग का दीप जल जाता है। इस प्रकाश से मानव का जीवन अजर, अमर, सुलभ हो जाता है। क्योंकि त्याग वही सच्चा है जिसमें ईश्वर प्रेम भरा हो। बाहरी दिखावे का बलिदान तो झूठा ही होता है। ईसा-मसीह महात्मा गांधी, सुकरात का बलिदान विश्व कल्याण के श्रोत बन गये हैं। यहीं से मानव अपने को संतुष्ट करने का मार्ग पाता है। प्रेम से ही आध्यात्मिकता की परख होती है। मानव के सच्चे ज्ञान की पहचान हृदय की विशालता से होती है यदि मानव विद्या की बहुत सी डिग्रियों से आभूषित हो पर उसका हृदय मानवता के कल्याण की ओर उन्मुख न हो तो वह विद्या ज्ञान का प्रतीक न होकर अविद्या-अज्ञानता का प्रतीक है। मानव

जगत में प्राणियों से जितना अधिक प्रेम होगा उतनी ही निकटता ईश्वर से होती जायेगी। ईश्वर प्राप्ति की राह में प्रेम ही प्रधान है क्योंकि इसमें राग और द्वेष नहीं होता है, क्योंकि प्रेम की कोई सीमा नहीं होती। प्रेम की भावना केवल मानव तक ही सीमित नहीं होती अपितु पशु, सारे जीव, फल-पौधे इत्यादि से भी होती है। मानव के हृदय में अहम् की भावना का नामों निशान नहीं रहना चाहिये, जिससे मैं-तू सब मिट जाय, जिससे श्रद्धा-प्रेम शील और अनुशासन का रूप धारण कर लें।

आध्यात्मिकता का मार्ग अत्यधिक सूक्ष्म है। यदि मानव प्रेम व सेवा भाव को अपने हृदय से अपनाकर व्यवहार में भी अपनाये, तभी ईश्वर प्राप्ति संभव हो सकती हैं। दीन-दुखियों की सेवा में ही आध्यात्म विद्या का सूक्ष्म मार्ग छिपा है। जो सेवा निस्वार्थ भाव से की जाती है। वही महत्वपूर्ण होती है। निस्वार्थ सेवा से ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग सुगम हो सकता है। आध्यात्मिकता के मार्ग में उन्नति करने के लिये मालिक की याद भी आवश्यक है। यदि किसी को ऐसा अनुभव हो कि सतत् स्मरण जितनी गहराई से होना चाहिये उतना नहीं है। अपने मालिक से प्रार्थना करें कि हमारी त्रुटियों को क्षमा करें और आध्यात्मिकता के मार्ग में उन्नति के लिये गुणों की वृद्धि हममें उत्पन्न करें।

हे मालिक ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर चलने की शक्ति दे। मानव कमजोर प्रकृति का प्राणी है। वह अपने पथ से भटक सकता है। उसे भटकने से बचाना। हे मालिक हम आपके सेवक हैं। आपके द्वारा दिखाया मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ होगा जो हमें हमारे जीवन के मुख्य लक्ष्य तक ले जाने में सहायक होगा। सच्चे प्रेम भरे हृदय से करी गयी प्रार्थना का प्रभाव मालिक के हृदय पर प्रभावकारी होता है। आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति प्राकृतिक नियमों के आधार पर होती है। ध्यान व प्रेम से अभ्यासी की ईश्वर प्राप्ति की राह में प्रगति निरन्तर होती रहेगी। हमें हर पल यह ध्यान रखना है कि अपने ध्येय पर हमारी दृष्टि जमी रहे और हम एक पल के लिये भी न भटकें। जितनी लग्न से हम इस कार्य में संलग्न रहेंगे उतने ही प्रवाह से ईश्वरीय फैज़ (प्राणाहुति) हममें प्रवेश करेगी। यह संसार तो स्वप्न के

समान मिथ्या व नश्वर है। अतः हमें सांसारिक जीवन बिताते हुये भी अपने को सांसारिक माया मोह के जाल से बचाये रखना चाहिये। और सांसारिक झगड़े-झंझटों से दूर रहना चाहिये। पर जब प्राणी संसार में आया है तो सांसारिक वातावरण से प्रभावित तो होगा ही पर प्रभाव में रह कर भी अपना ध्यान वास्तविक ध्येय पर ही रखना है।

यह एक बहुत अहम प्रश्न है कि इन्सान का कर्तव्य क्या है। यदि मानव इस पर थोड़ा भी विचार करे तो इस प्रश्न का हल निकाल सकता है। अपनी वास्तविकता को पहचान कर वह अपने सद्गुरु से ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर उसमें ही लय हो जाना उसका प्रमुख कर्तव्य है। साथ ही साथ कर्म धर्म, ज्ञान को अपने जीवन में सदा उपयोग में लाते रहना उसका दूसरा कर्तव्य है। सम्पूर्ण मानव बनना कोई आसान कार्य नहीं है। जो मनुष्य सभी ईश्वरीय शक्तियों को प्रयोग में लाता हुआ अपने सभी लौकिक व अलौकिक कर्तव्यों को पूरा करता हुआ दुखः सुख, राग द्वेष, लालच,आशा निराशा व माया मोह तथा अपने पराये के प्रभाव से स्वयं को अछूता रखता हुआ भी अपने को स्वच्छ रखता है। जैसे सूर्य की रोशनी या आकाश हर स्थान पर व हर पल हर हालत में विद्यमान रहते हुए भी उनसे जिस प्रकार स्वप्न देखते समय हमारा अस्तित्व सपनों से भिन्न रहता है। उसी प्रकार आकाश मंडल में सूरज की रौशनी में झिल-मिलाती हुई छोटे-छोटे घेरों में लहरे व सूरते उठती रहती हैं, दृष्टि जमाने से भिन्न-भिन्न दिखाई देती हैं। लेकिन आकाश तत्व या सूर्य की रोशनी हर जगह एक सार एक से बहाव में फैलती रहती है। इसी प्रकार शुद्ध ज्ञान का स्वरूप भी ऐसी ही अनेक वासना व अहंकार व दुःख-सुख आदि विभिन्न भावनाओं इत्यादि से सम्बन्ध रखते हुए भी उन सभी को अपने प्रकाश में समेटे रहता है। वहीं के वहीं मिटते व बदलते हुए नजर आते हुए भी इनसे किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखते हुए भी बिलकुल पवित्र व स्वच्छ वैसा ही बना रहता है। जिस मनुष्य ने इस ब्रह्म स्वरूप आत्मा का अनुभव कर लिया तो वह संसार में रहते हुए भी सांसारिक बन्धनों से ऊंचा उठ कर ब्रह्ममय होकर माया के प्रपंचों से हर पल स्वयं को बचाते हुए आध्यात्मिकता की राह पर अग्रसर हो जाता है।

मानव को आध्यात्मिकता की दशायें स्वमेव प्राप्त होती जाती हैं। पर उसके लिये भी आध्यात्मिकता के क्षेत्र में सद्गुरु के सहारे की आवश्यकता पड़ती है। यह सहारा गुरु के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखने से ही हम प्राप्त कर सकते हैं।

आध्यात्मिकता की दशायें अपने वास्तविक रूप में तभी खुलती हैं, जब मनुष्य वास्तव में सद्गुरु की कृपा से साक्षात्कार (दिव्य शक्ति) को पाने की ओर अग्रसर होता है। इस मार्ग में उन्नति प्राप्त करने की विधि गुरु के प्रति विश्वास, निर्भरता और सतत स्मरण है। क्योंकि सतसंग से प्रेम, भक्ति व विश्वास की प्रेरणायें स्वयंमेव उभरने लगती हैं। और दबे हुए अच्छे संस्कार ईश्वरीय प्रकाश के प्रभाव से बहुत जल्द उभर पड़ते हैं, जिनका प्रभाव मानव के प्रत्येक क्रिया कलापों में झलकने लगता है। तथा मनुष्य को अपनी आध्यात्मिक प्रगति व अवस्था का बोध होने लगता है। उदाहरणार्थ-आग में दो गुण होते हैं। (१) रोशनी या प्रकाश (२) गर्मी।

वास्तव में आग तो सही माने में न तो रोशनी ही कही जा सकती है ना ही गर्मी। वह तो इन दोनों गुणों से मिन्न है। क्योंकि गुण-गुणी नहीं हो सकता, अतः इसका यह अर्थ है कि इसी प्रकार के दो गुण हममें भी विद्यमान हैं। पर इन्हीं दोनों की गुत्थी खुलने पर प्रेम, भक्ति व ज्ञान प्रकट होते हैं। क्योंकि यह दोनों हालतें वास्तविकता का ज्ञान देती हैं।

मानव पर जब कभी ईश्वरीय कृपा विशेष रूप से प्रवाहित होती है तो उस मनुष्य के हृदय में इस बात की इच्छा जाग उठती है कि वह स्वयं को पहचान कर ईश्वर को प्राप्त कर सके। अर्थात् आत्म साक्षातकार करके ईश्वर साक्षातकार कर सके और ईश्वर को प्राप्त कर सके। इसी बीच इस इच्छा के शुभ परिणाम स्वरूप परमात्मा अपनी कृपा से मनुष्य को उचित गुरु के पास पहुंचा देता है। जो आध्यात्मिकता के मार्ग का स्वयं पथ प्रदर्शक है। वह मानव की योग्यता के अनुसार उसे इस मार्ग में आध्यात्मिक उन्नति कराता चलता है। जब भी ईश्वर की कृपा होती है या यों कहिये हमारी खुश किस्मती से ऐसे महात्मा का साथ

मिलता है। हमें चाहिये कि अपने उस गुरु की सेवा में सम्पूर्ण श्रद्धा, प्रेम से लग जाएं। और उनका पूरा ख्याल रखें तथा अपने को ईश्वर के हवाले कर दें। जिस तरह से एक मुर्दा शरीर उसको नहलाने वाले के हवाले होता है। एक सर्वगुण सम्पन्न गुरु की खोज करने में बहुत सावधानी से काम लेना चाहिये। लेकिन जब ऐसा महात्मा गुरु मिल जाय तो हमें प्रति पल उसकी बताई विधि को अपना कर अपने दोनों लोकों को सुधर लेना चाहिये। अपने महान गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा व विश्वास रखना चाहिये। और पूरे विश्वास से अपने को गुरुजी को सौंप देना चाहिये। और जो आज्ञा गुरु जी दें उनकी आज्ञा को पूरी तरह से निभाना चाहिये। तन, मन धन सब उस परम शक्ति का समझ कर, उस पर अर्पण हो जाना चाहिये।

आध्यात्मिकता की राह पर चलने में हमारा सम्बन्ध शरीयत, तरीकत, मरफत व हकीकत शरीर, आत्मा, ईश्वर व वास्तविकता से पड़ता है और लक्ष्य प्राप्ति के लिये हमें इन सभी का वास्तविक ज्ञान होना आवश्यक है।

शरीयत- अर्थात् जिसका सीधा सम्बन्ध शरीर व इन्द्रियों से होता है। इस संसार में रह कर हमें अपने सभी कर्तव्य इस प्रकार निभाने चाहियें कि दुनियां या इस संसार में रहकर सांसारिक कार्यों को करते हुए बिना किसी कठिनाई या चिन्ता सीधे मार्ग पर चलते जायें पर सांसारिक झंझट, परेशानियां हमें गुमराह न कर सकें। और हम कदम-कदम चलते हुए अपने लक्ष्य तक पहुंच जायें। इस संसार रूपी सागर में हर समय चिन्ता कठिनाइयों रूपी लहरों के ज्वार भाटे उठते रहते हैं। पर उनको हृदय और मस्तिष्क पर कभी हावी न होने देना चाहिये। अपने विचार और व्यवहार को पवित्र रखना चाहिये। जिससे आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में किसी बात की बाधा न पड़े।

तरीकत- का सम्बंध उन सब से होता है जिनका सम्बन्ध हमारे अन्तःकरण या हृदय-मन से होता है। हमें सदैव यह ध्यान रखना चाहिये कि हमारे अनतःकरण में सदा ईश्वर का ध्यान रहना चाहिये। जिससे कोई सांसारिक

चीज हमारे हृदय पर अपना प्रभाव न डाल सके। ताकि हम अपने सद्गुरु के बताये मार्ग पर ध्यान, अभ्यास व उपासना द्वारा निरन्तर ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर चल कर अपने जीवन के उद्देश्य की मंजिल पर पहुंच सकें। मालिक द्वारा बनाये नियमों का पालन करते हुऐ अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिये सतर्क रहें।

मरफत- का सम्बंध हृदय व शरीर की शुद्धता से है। मनुष्य को ईश्वर की सहायता से अपने हृदय व शरीर को शुद्ध व पवित्र बना लेना चाहिये। ऐसा होने पर मनुष्य की वह हालत उत्पन्न हो जाती है जिससे अभ्यासी को आनन्द ही आनन्द का अनुभव होता है। उस पर सांसारिक अवस्थायें प्रभाव नहीं डाल पाती हैं। मानव इस स्थिति में आकर अपनी आत्मा का ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता है। वास्तव में यही स्थिति परमात्मा या ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करवाती है। ऐसी स्थिति में आकर वास्तविकता की स्थिति को प्राप्त करना और आसान हो जाता है। अभ्यासी ईश्वरीय आनन्द व प्रकाश में इतना डूब जाता है कि उसे तन-मन किसी की कुछ भी खबर नहीं रहती है, और इसी अवस्था को सुशुप्त या समाधि अवस्था कहते हैं। यहां पहुंचने पर अभ्यासी को सत्य-असत्य का ज्ञान होता है। आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होता है जो सतरूप, ज्ञान स्वरूप सच्चिदानन्द है।

धर्मशास्त्रों के अनुसार सांसारिक उत्तरदयित्वों को निभाना ही आध्यात्मिकता का ज्ञान है। अर्थात् सांसारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करके आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलना ही महत्वपूर्ण हैं। इस मार्ग पर चलने के लिये व्यक्ति को अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना अत्यनत आवश्यक है। इन्द्रियां ही मानव के चित्त को चंचल बनाती हैं। इस कारण उसका हृदय-मस्तिष्क सब उनके प्रभाव से ग्रसित होते हैं। आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलने के लिये इन्द्रियों को नियंत्रण में रखना पड़ता है। प्रभु ने इन्द्रियां प्रयोग करने के लिये ही दी हैं, उनका अनुचित प्रयोग न करें। (१) आंख मालिक ने देखने को दी हैं, देखने पर अच्छे विचार (भाव) से ही चीजों को देखें क्योंकि उसका हृदय पर प्रभाव पड़ता है। (२) कान मनुष्य को ईश्वर ने सुनने के लिऐ दिये हैं उनसे सुनने पर हृदय पर अच्छा प्रभाव ही पड़े। (३) जिव्हा तीसरी ज्ञानेन्द्री है जिसका प्रयोग ईश्वर की अच्छी बातों के

लिये करें। अनुचित बात अपने मुंह से न निकालें जो किसी के हृदय पर अपना प्रभाव न छोड़ जाय अर्थात् कटु शब्दों का प्रयोग न करें। (४) नाक से व्यक्ति सूंघता है उसका असर भी हृदय पटल पर पड़ता है इस कारण उसका प्रयोग भी अच्छाई के लिये ही करें। (५) स्पर्श-हाथों से ही संभव है। इस ज्ञानेन्द्री का प्रभाव भी मानव के हृदय पर पड़ता है। इस कारण हाथो का प्रयोग अच्छाई के लिये सेवा भाव से हो। इसका अनुचित प्रयोग जुल्म-जबरदस्ती-मार-पीट या किसी को दुःख पहुंचाने के लिये न हो। मानव अपने हाथों का प्रयोग धार्मिक कार्य सेवा-भाव के लिये ही करें। पांव कभी बुरे स्थान की ओर न उठें और अपने मन के समुद्र को सदैव शान्त करने के प्रत्यन्त में लगे रहें। मानव को अपनी नजर को स्थिर और शान्त रखते हुए अपना पूरा ध्यान अपनी रहनी-सहनी को साधारण बनाने में लगाना चाहिये। उच्च विचार बनाने का प्रत्यन्न करने से थोड़े समय में ही मानव में परिवर्तन आना आरम्भ हो जाता है। हम सभी को मन्सा-वाचा-कर्मणा से एक अच्छा मनुष्य बनने का प्रयत्न करना चाहिये। जिससे सद्गुरु की कृपा से परम शान्ति पद को प्राप्त कर सकें। और उसी ईश्वर की वास्तविकता में लय हो जाये यही मनुष्य जीवन की पूर्णता का प्रतीक है।

मनुष्य की पूर्णता इसी में है कि दीन और दुनियां दोनों के साथ सहयोग करके अपने कर्तव्य पालन करता हुआ अपने जीवन पथ पर चलता जाए। आध्यात्मिक व सांसारिक अवस्थाओं को संतुलित रहना चाहिये उससे मानव का स्वास्थ सही बना रहता है। शारीरिक मानसिक व आत्मिक इन सब के बीच के सम्बन्ध सही रहने से दोनों लोक में हमारी स्थिति सही रहती है और आध्यात्मिक स्थिति में भी हमारी सांसारिक स्थिति के अनुसार परिवर्तन समय-समय के अनुसार होते रहते हैं। जिससे व्यक्ति कभी-कभी ऐसी स्थिति पर पहुंच जाता है जहां उसे दुःख, खुशी, गम किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं कर पाते हैं। मानव का चित्त शान्त हो जाता है। ऐसी अवस्था आने पर शारीरिक मानसिक, आत्मिक अवस्थायें एक ही हालत में रहती हैं। प्रति दिन के जीवन में जो कार्य अनिवार्य हो उन्हें बिना हिचकिचाहट के करना चाहिये, समाज में परिवर्तन लाने का प्रत्यन करना चाहिये,

गृहस्थी और समाज अपने-अपने स्थान पर हैं। समाज, गृहस्थी में अपना नाम या प्रसिद्धि के लिये अनावश्यक बढ़ा-चढ़ा कर बातें नहीं करनी चाहिये। सत्य को हमेशा मान्यता देनी चाहिए। हर स्थिति में निश्चल बना रहना चाहिये। जिस प्रकार समुद्र की लहरें ऊपरी सतह पर ऊंची उठती हैं पर तल में शान्त होती हैं। वही आध्यात्मिक हालत मानव की होती है। जिस प्रकार परमात्मा इस समपूर्ण संसार को चलाने के लिये हर पल हर प्राणी के हर कार्य में जाने अनजाने सहायक होता है। मनुष्य की सभी आवश्यकतायें पूरी करता रहता है चाहे कोई उसके अस्तित्व को माने या ना माने उसे पूजे या ना पूजे। इसी प्रकार महात्मा संत, गुरु अपने कार्य को पूरा करने आते हैं वह परमात्मा के प्रति प्यार रखते हुये दुनियां के जीवों के प्रति अपने कर्तव्य का भी पालन करते हुए अपनी जीविका का समय इस संसार में बिताते जाते हैं। वह यह भी ध्यान रखते हैं कि कोई भी व्यक्ति ईश्वरीय कृपा से वंचित न रह जाय। ईश्वर ऐसे बन्दों को सदा तकलीफ और परेशानियां देता है। जिन्हें वह अधिक प्रेम करता है। इसी कारण अनेक परेशानियों और तकलीफों के बावजूद भी मालिक के बन्दे उसे हमेशा याद करते रहते हैं। अगर यह तकलीफें परेशानियां ईश्वर का दिया वरदान समझ कर, सहन-शीलता व सब्र से सहन की जायें तो ये एक अच्छी रंगत व कैफियत पैदा कर सकती है। इस प्रकार ईश्वर के दिये दुःख दर्दों का परिणाम या फल ईश्वर अच्छा ही देता है। क्योंकि ईश्वर की कृपा की वर्षा उनके चहेते बन्दों पर कुछ विशेष ही होती है। वास्तव में मानव को किसी भी कार्य को करने की शक्ति भी वहीं देता है। पर हर प्राणी को ईश्वर द्वारा दी गयी शक्ति का एहसास नहीं होता है। हर कार्य में मालिक की सहायता का ध्यान रखना आवश्यक है, पर ईश्वर पर ही छोड़ देना भी उचित नहीं है। हम सबको हमारा काम स्वयं करना चाहिये।

दुःख सुख सब हमारे कर्मों व संस्कारों आदि के परिणाम हैं, यह ईश्वर द्वारा हमें नहीं मिलते वरन इन्हें हम स्वयं अपने गलत कर्मों तथा अनुचित विचारों, गलत संस्कारों से दुःख, दर्द की दीवार बनाते हैं। अर्थात अपने जीवन पथ पर कठिनाईयां भी हम स्वयं ही पैदा करते हैं। उन को इस जीवन काल में भोग कर,

हम स्वयं ही अपने जीवन पथ को साफ बना सकते हैं, जो ईश्वर के द्वार तक जाता है। ईश्वर तो हम सबको भोगों को सहन करने की शक्ति देता है, अच्छे बुरे का ज्ञान भी देता है, पर उसे समझना या न समझना हमारे ऊपर है। जब हम ईश्वर या अपने महात्मा स्वरूप गुरु की महानता को समझ जाते हैं तो स्वयं उसके ध्यान में रह कर उससे आत्म साक्षात्कार और ईश्वर साक्षातकार जैसे दुर्लभ स्थिति को सुलभ बनाने की प्रार्थना ईश्वर से करनी चाहिये। दुःख सुख तो जीवन के दो पहलू हैं वह तो हर पल मनुष्य के साथ रहते हैं गुरु की कृपा समझकर धैर्य से इन्हें सहन करना चाहिये। किसी ने ठीक ही कहा है:-

दोहा- कर्म योग काटे कटे, ज्ञानी मूरख दोय।
ज्ञानी काटे ज्ञान से, मूरख काटे रोय।।

धीरे-धीरे मालिक के प्रति समर्पण की भावना दृढ़ होती जाती है। जिसके फल स्वरूप प्रेम और श्रद्धा बढ़ जाती है, और आध्यात्मिक स्थिति अच्छी हो जाती है। जिसके फलस्वरूप अनहोनी बातें व अनभिज्ञ स्थितियां व दशायें स्वयंमेव विचारों में आ जाती हैं। परन्तु मानव को उन दशाओं, अवस्थाओं के आने का ज्ञान मानव को नहीं होता है। वह मालिक की याद में मग्न रहता हुआ दीन-दुनियां से अनभिज्ञ रह कर आध्यात्मिकता की जाने-अनज़ाने कितनी सीढ़ियां पार करता जाता है।

जिस प्रकार सूर्योदय होने पर उसकी रोशनी सम्पूर्ण अन्धेरे को हटा कर सारे संसार में प्रकाश फैलाती है। सूर्योदय से सारे संसार में चहल-पहल हो जाती है, प्रत्येक प्राणी में नया उत्साह नजर आता है। सब नये दिन के उल्लास में अपने में तरो ताजगी का अनुभव करते हैं। उसके प्रभाव से सारी प्रकृति प्रभावित होती है मनुष्य भी प्रभावित हुए बिना रह नहीं पाता है। उसी प्रकार जब किसी मानव के हृदय में गुरु के प्रभाव का सूर्योदय होता है, तो उसका हृदय भी ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है। उससे उसके हृदय में आध्यात्मिकता के रहस्यों का उद्‌घाटन होता जाता है। अभ्यासी अपने गुरु के प्यार भरे आंचल में अपने

को खो देता है। हर मानव को आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये। बिना फल की इच्छा किये निरन्तर एक निष्ठा, श्रद्धा, प्रेम से अभ्यास करते रहना चाहिये। मानव का मन चलायमान (चंचल) है, पर बुद्धिमता से अपना कर्तव्य-पालन करते हुये अभ्यास करते रहना ही आध्यात्मिकता की उन्नति के लिये उचित है। अपने कर्तव्य का पालन करते हुये आलस्य या लापरवाही से दूर रह कर परिणाम पर ध्यान न देना चाहिये, क्योंकि सफलता असफलता पर हमारा वश नहीं है, उसे ईश्वर पर विश्वास के साथ छोड़ना ही सबके लिये हितकर है।

मनुष्य को अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए दुख और सुख दोनों का सहारा लेना पड़ता है। दोनों स्थितियों में से गुजरते हुये हमें अनुशासन (इखलाक) के महत्व को नहीं भूलना चाहिये। दुःख के बिना सुख का आभास सम्भव नहीं और सुख का अनुभव दुख के अनुभव से ही होता है। सुख दुख की अनुभूति ही प्रकृति का नियम है। दुख सुख का अनुभव एक दूसरे के बिना सम्भव नहीं है। दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। जब तक मानव शरीर है दुःख-सुख की हालत चलती ही रहेगी। पर सुख की हालत मानव को परमात्मा से दूर ले जाती है। दुःख की दशा में मानव ईश्वर को हर समय याद करके उसके अधिक निकट पहुंच जाता है। आम मानव के विचार से सुख रौशनी है तो दुख धुआं है। पर आध्यात्मिकता के अनुसार सुख नशा है, जिसमें व्यक्ति खो जाता है। पर दुख वह धुआं है जिसके अन्धकार में ईश्वरीय प्रकाश के दर्शन होते हैं। क्योंकि अन्धकार में ही हर चमक, रौशनी, प्रकाश का आभास होता है। रोशनी में रोशनी (प्रकाश) दिखाई नहीं देती। उसके लिये अन्धकार की ही आवश्यकता होती है। सुख का पलड़ा आम मानव के लिये दुःख से भारी होता है। पर आध्यात्मिक मानव के लिये दुःख का पड़ला ही भारी होता है। क्योंकि दुःख की काली छाया में ही प्रकाश के दर्शन होते हैं। आग में जल कर ही सोना खरा होता है उसी प्रकार मानव दुःख की तपती आग पर चल कर अपने संस्कार, बुरे विचार बुरी भावना ठोसता को जला कर राख कर देता है और खरा हो जाता

है, अर्थात् पवित्र होकर मोक्ष पाने के मार्ग पर अग्रसर हो जाता है। मोक्ष तथा आध्यात्मिकता का मार्ग दुःख, दर्द, के काटों से भरा हुआ है पर शन्ति, सहनशीलता, विश्वास, प्रेम की भावना रख कर गुरु का हाथ पकड़ कर इस मार्ग पर चला जाये तो, गुरु महाराज की कृपा व्यक्ति को भटकने नहीं देती। साथ ही मानव का धैर्य, गुरु जी के प्रति पूरा विश्वास, प्रेम रख कर बस हर पल आध्यात्मिकता का अभ्यास करे तो वह इस मार्ग पर सफल हो सकता है। हर सामाजिक, आध्यात्मिक कार्य स्वयं ही सुचारू रूप से होते चले जाते हैं। सुख हर दुःख की मंजिल है।

यह तो सर्व विदित है कि मनुष्य का चोला प्राप्त करने से पूर्ण मानव को ८४ लाख योनियों के भोग में से अनेक योनियों से गुजरना पड़ता है। इस भोग के बीच जिस प्राणी के संस्कार अच्छे होते हैं, उसका खिचाव ईश्वर की तरफ अधिक होता है, उसका खिंचाव ईश्वर को अपनी ओर खींचता है। तब प्राणी के प्रति ईश्वर के हृदय में खिंचाव पैदा होता है तो ईश्वर कुछ योनियों के भोग कम करवाकर उसे मानव शरीर प्रदान कराता है। उसको संसार के कर्म योग करवाकर, उसे ईश्वर शक्ति को पहचानने का एक अवसर और देता है। मानव इस जीवन में अपने को सुधार कर, ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा विश्वास का सहारा लेकर आध्यात्मिकता के मार्ग पर चल पड़ता है। जो उसके अगले जीवन का निर्धारण करता है। और इस जीवन में आ कर प्राणी अपना भूत भविष्य सभी सुधार सकता है। इसके लिये ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा विश्वास बहुत आवश्यक है।

मनुष्य को इस जीवन में अपने आपको पहचानना चाहिये अपने को पहचान कर ही वह आगे ईश्वर को पहचानने के योग्य बन सकता है।

अपने आपको आप पहचानों,
कहां और क्या नेक न मानो।

प्रश्न उठता है, मानव है क्या? मानव वह हस्ती है जो शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, व्यवहारिक, सभी शक्तियों से परिपूर्ण है, और इन सब पर नियत्रंण भी

रख सकता है। अपने शारीरिक संगठन को पहचान कर संतुलित भी रह सकता है, उसमें विचारने, ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति भी होती है। वह अच्छाई, बुराई के अन्तर को समझ कर बुराई को छोड़ कर अच्छाई पर चल सकता है। संतुलित जीवन बिता कर कोई भी प्राणी अपने आध्यात्मिक, सामाजिक दोनों मार्गों पर आसानी से चल सकता है। वास्तव में मानव अपने नेक, सरल स्वभाव, और अपने पवित्र रहन-सहन से वास्तविकता से मेल खाता है। आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलने के लिये-

(१) हृदय तथा मन की शुद्धता
(२) हृदय और मन की सफाई

हृदय व मन की शुद्धता उसकी सफाई पर निर्भर है सफाई आध्यात्मिकता के मार्ग में गुरु की दी विचार शक्ति से संभव है। इसके करने से मालिक की याद व उसकी उपस्थिति का आभास हर पल अनुभव होता है, जिससे हृदय की लगन और मालिक का ध्यान हमेशा बना रहता है।

मालिक के प्रति प्रेम व उसके प्रति अपनी लगन को हर पल बनाये रखना व उसी के प्रेम का रसपान करने के आनन्द में लीन हो जाना या मालिक में खो जाना, इससे गुरु प्रेम का विश्वास पल-पल बढ़ता ही जाता है। सच्चाई से पैदा हुई नियति में खुद ही एक कोशिश होती है जो अन्दर से छिपी हुई होती है। वह गुरु प्रेम व विश्वास से उभर आती है, जिससे मानव में आनन्द व शान्ति का रूप निखरता है। ईश्वर प्रेम की इस दशा के मिलने पर मनुष्य को सांसारिक, दुख-सुख में शान्ति तलाश करने की इच्छा समाप्त हो जाती है। मालिक प्रेम की उमंग हृदय में उठने लगती है। जिसका स्वभाविक परिणाम यह होता है कि मनुष्य के अपने सांसारिक जीवन के रीति-रिवाजों के छोटे-छोटे बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। अर्थात् मनुष्य का सांसारिक रीति-रिवाज के प्रति मन हट जाता है धीरे-धीरे मनुष्य में यह परिवर्तन स्वयं प्रारम्भ होता जाता है। योग वशिष्ठ का सार केवल चार बातों में आ जाता है।

(१) सम
(२) सन्तोष
(३) विचार
(४) अभ्यास।

इन चार नियमों की रोशनी पर दृष्टि रखकर, सांसारिक व मानसिक व्यवहारों व रीति-रिवाजों की बन्दिश में चलना स्वयं शान्ति का मार्ग है। वह शान्ति अपने ही आप अपने ही मानव जाति और अपनी ही शारीरिक मानसिक आध्यात्मिक व दुनियावी चरित्र से विचरते हुये भी प्राप्त की जा सकती है। आन्तरिक स्थिति पर बाहरी स्थिति का जो प्रभाव पड़ता है वह अपने सम्बन्धी कार्यों के कारण ही पड़ता है। उपरोक्त नियम मानव के उचित विकास के लिये सहायक होंगे अगर उनके महत्व को समझ कर सांसारिक और आध्यात्मिक मार्ग पर चला जाय।

वास्तव में गुरु किसे कह सकते या मान सकते हैं। लालाजी महाराज के अनुसार साधारण भाषा में "जो साधारण मानवी निर्बलताओं से परे साधारण मानव से भिन्न है।" वह संसार में रह कर भी सांसारिक वातावरण से प्रभावित नहीं होता और गुरु के गुणों की झलक उसके व्यक्तित्व में होती है। जिसका अनुसरण करके कोई भी अभ्यासी या शिष्य अपने को धन्य समझ सकता है। प्रकृति ने प्रत्येक मनुष्य को गुण अवगुण प्रदान किये हैं जो उसमें विद्यमान रहते हैं। गुणों की अधिकता या कमी मानव को अच्छा-बुरा प्रकट करती है। गुण, दोष के बढ़ाव या घटाव का वहम मनुष्य में सुख-दुख का रूप ले लेता है। पर बात यहां केवल संत और सधाव की ही होती है। संत और सधाव भी साधना का परिणाम ही होता है। सद्गुरु मनुष्य को साधना की विधि से अवगत कराते हैं जिससे सद्गुरु के समस्त शिष्य उस विधि से साधना करके लाभ उठा सकें। अर्थात् उचित विधि से साधना करके शान्ति के मार्ग पर चल सकें।

हर अभ्यासी के हृदय में भक्ति भाव का उदय, गुरु के प्रति प्रेम, विश्वास, और श्रद्धा से होता है। जितना अधिक प्रेम, विश्वास और श्रद्धा का भाव अधिक

दृढ़ होगा उतना ही दृढ़ भक्ति भाव अभ्यासी में होगा। ऐसा होने से व्यक्ति को सद्गुरु व उनके सतसंग की प्राप्ति अवश्य होती है। जिसका प्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व पर अच्छा पड़ता है। उस प्रभाव से व्यक्ति के विचार बदलने लगते हैं। उसमें (जिद्दीपन) रूठ व अज्ञानता की कमी हो जाती है। और इनके स्थान पर प्रेम, ग्रहण शक्ति, सेवा व भक्ति भाव के विचार उत्पन होना आरम्भ हो जाते हैं। जो आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलने में सहायक होते हैं, जिससे ईश्वर प्राप्ति का मार्ग सुगम हो जाता है। व्यक्ति का बैद्धिक स्तर ऊंचा हो जाता है जिससे उसमें समझने की शक्ति आ जाती है। उसमें गुरु की नेक सलाह व उपदेश आदि को ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती जाती है। औरे अपने गुरु की बताई हर बात को स्वीकार करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। जैसे-जैसे व्यक्ति में मालिक की बात ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उसके हृदय में अपने गुरु के प्रति अनुराग प्रेम जाग्रत होने लगता है। तब व्यक्ति या अभ्यासी को चाहिये कि चुपचाप ईश्वर या मालिक जो कुछ प्रदान करे उसको ग्रहण करके पचाने का प्रयत्न करे। अपना गुरु बनाने से पहले हर व्यक्ति को यह अवश्य देख लेना चाहिये कि उसके सद्गुरु स्वयं ब्रह्मनिष्ठ, शक्तिशाली, पूर्ण आध्यात्मिक व्यक्ति हैं या नहीं। यह सच है-

गुरु कीजिए जान।
पानी पीजिए छान।।

जिस प्रकार अनुचित वृक्ष पर सही फल नहीं लगते, अगर खुदानाखासता फल लग भी गये तो वह स्वादिष्ट और रसदार नहीं होते। उसी प्रकार पूर्ण ज्ञानी, ब्रह्मलीन गुरु की शरण बिना हमें ईश्वर प्राप्ति नहीं हो सकती। परमार्थ, ईश्वर प्रेम, गुरु प्रेम के संस्कार यदि मानव में जाग्रित हो जायें तो उसे ईश्वर की कृपा से सद्गुरु मिल जायेगा, ऐसी स्थिति में मानव को किसी प्रकार के सतसंग की आवश्यकता नहीं रह जाती। तब व्यक्ति को गुरु के साथ अपना सम्बन्ध 'मुर्दा बदस्त गुस्साल' का कर लेना चाहिये।

तमन्ना दर्दे दिल की हो, तो कर खिदमत फकीरों की।
नहीं मिलता है यह गौहर, शहँशाही खजानों में।।

लाला जी के विचार से दर्दे दिल की इच्छा रखने वाला ही व्यक्ति ईश्वर के निकट शीघ्र आ सकता है। वास्तव में फकीरों की सेवा में जो आनन्द है वह शाही खजानों में ही ढूढ़े नहीं मिल सकता। इससे कष्ट तो सेवक को होता है पर फल ईश्वर की तरफ से अच्छा ही मिलता है। क्योंकि यह मार्ग भाक्ति और प्रेम का है, इसकी यही विशेषता है कि इसमें गुरु से एक बार जो सम्बन्ध शिष्य जोड़ता है उसे जीवन के अन्त तक दृढ़ता से निभाता जाय, और वह स्वयं किसी का हो जाय या किसी को आपना बना ले, इस प्रकार प्रेम श्रद्धा, विश्वास से आगे की आध्यात्मिक उन्नति स्वयं ही होती चली जायेगी।

खामोश ऐ दिल, भरी महफिल में चिल्लाना नहीं अच्छा।
अदब पहला करीना है, मोहब्बत के करीनों में।।

मानव जीवन के हर पहलू को प्रसन्नता से भरने के लिये मानव को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिये। ईश्वर अर्न्तायामी है वह सब प्राणियों के आन्तरिक व बाहरी व्यवहारों को देख सकता है, इस कारण हृदय में ईश्वर से भय रख कर बुरी भावना, बुरे कार्यों से दूर हटना चाहिये। हिम्मत और प्रसन्न चित्त ऐसी अच्छाइयां हैं जिनके होते हुये मानव हमेशा कठिनाई हो या विश्राम की स्थिति दोनों दशाओं में शान्ति से जीवन बिता सकता है। जो व्यक्ति सांसारिक आवश्यकताओं को महत्व देता है और सांसारिक आनन्द में अपने को डूबा रखना चाहता है। ईश्वर को भूल कर तो उसे किसी न किसी रूप में अनेक बार निराशा व मानसिक कष्टों और शारीरिक कष्टों का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत जो मनुष्य अपने सारे सांसारिक विषय और आवश्यकताओं को ईश्वर के दिये कर्तव्य के रूप में प्रयोग करता है। वह कभी न परेशान होता है न दुखी। किसी ने एक अच्छी आयु के महात्मा से पूछा कि वास्तव में यह संसार है क्या? और इसमें रहते हुये उलझनों व कठिनाईयों से कभी दूर भी रहा जा सकता है।

महात्मा ने कहा, दुनिया में रहकर दुनिया के तत्वों से ही हम सब बने हैं। फिर कोई भी प्राणी दुनिया में रह कर दुनिया के शिकंजे से छुटकारा कैसे पा सकता है। जब तक दुनिया के भौतिक तत्वों से बना शरीर इस संसार में है तब तक यह इस दुनियावी सम्बन्धों, रहस्यों, रिवाजों से बच कर नहीं रह सकता है। क्योंकि दोनों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है इस कारण दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता ऐसा विचार लाना ही अनुचित है, क्योंकि संसार और मानव को अलग नहीं किया जा सकता। पर एक ऐसा मार्ग है जिसे 'सहज-मार्ग' कहते हैं, इसके संस्थापक गुरु महात्मा रामचन्द्र जी शहाजहांपुर के अनुसार इस संसार और सांसारिक रीति-रीवाजों से नाता रखते हुये मानव सामाजिक सांसारिक कठिनाई और उलझनों से बचा रह सकता है। वह ऐसे कि संसार की तरफ से अपनी विचार शक्ति को हटाकर ईश्वर के पवित्र विचारों में डूब जाय। और ईश्वर की दी कठिनाइयों, परेशानियों को ईश्वर का प्रसाद समझ कर सहन करें तो ईश्वर सहन शक्ति भी प्रदान करेंगे। ईश्वर से शक्ति लेने के लिये अपने मालिक या गुरु के प्रति प्रेम और श्रद्धा का भाव हृदय में दृढ़ कर लें, क्योंकि सम्पूर्ण जगत को हर पल चलाने वाले ईश्वर हैं उसी की इच्छा से संसार का कार्य-कलाप चलता है। अतः जहां सद्गुरु व ईश्वर का विचार होगा वहीं प्राकृतिक रूप से हृदय सांसारिक स्थितियों में रहते हुये भी उनसे अलग और शान्त रहेगा। अगर सच्चा प्रेम, श्रद्धा, भक्ति मनुष्य के अन्दर उत्पन्न हो जाती है तो वह अपने गुरु या मालिक की याद में इस संसार की हर कठिनाई सहन करने की शक्ति अपने में उत्पन्न कर सकता है। अर्थात् मालिक उस का सहायक हो जाता है।

सांसारिक चीजें, सम्बन्ध जैसे रुपया-पैसा जमीन ज्यादाद, माँ, बाप, पत्नी बच्चे आदि के स्नेह और मोह में फंस कर मनुष्य अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को उन्हीं में व्यस्त रह कर व्यर्थ में गवा देते हैं। इनके प्रेम और मोह का प्रभाव मनुष्य के मन से ईश्वर की याद, प्रेम-भक्ति व विश्वास की पवित्रत और दिव्यता को हटा देता है। इससे मनुष्य के हृदय में ईश्वर की आकृति धुंधली पड़ जाती

है। और जिन चीजों का प्रभाव उसके हृदय पर जम जाता है वह सब सांसारिक कही जा सकती हैं। इन सांसारिक क्रिया-कलापों में मनुष्य फंस जाता है, और धीरे-धीरे इतना अधिक फंसता जाता है कि शीघ्र इससे निकलना कठिन हो जाता हैं ऐसी स्थिति में आने पर मनुष्य को ईश्वरीय शक्ति की सहायता की आवश्यकता पड़ती है, अगर मनुष्य इस स्थिति से निकलना चाहता है तो ईश्वर एक महान आत्मा को गुरु के रूप में उसकी सहायता के लिये भेज देता है। पर व्यक्ति का मन चंचल है, हृदय पर पड़े संस्कारों के प्रभाव को हटाने में समय लगता है मन चंचल होने से वह शीघ्र ही सुख आराम के मार्ग की ओर चल देता है। ईश्वर प्राप्ति का मार्ग कठिन है। साधारण प्राणी की प्रकृति सहज, आराम सुख की ओर ही आकर्षित होती है। आध्यात्मिक व्यक्ति पर अपने गुरु का प्रभाव होता है। इस कारण वह आध्यात्मिकता के मार्ग को छोड़ना आसानी से पसन्द नहीं करता है। साधारणतया मनुष्य में अहम् व अहंकार की भावना बड़ी बलवती होती है। पर आध्यात्मिक व्यक्ति वही कहलाता है जो ईश्वर के आशीर्वाद से अपने अहम् और अहंकार की आहुति दे चुका होता है। अहम् व अहंकार व्यक्ति की उन्नति किसी भी क्षेत्र में नहीं होने देते हैं, संसार में रह कर ऐसे व्यक्ति कहीं सफल नहीं होते और आध्यात्मिक मार्ग में भी यह दोनों उन्नति के मार्ग में बाधक होते हैं। इन दोनों की उपस्थिति मानव में हानिकारक है क्योंकि इन भावों की तीव्रता से माया-मोह के भाव उत्पन्न होते हैं जो मनुष्य को माया में ऐसा उलझा देते हैं कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य तो भूल ही जाता है। साथ ही माया के प्रभाव से ईश्वर (गुरु) के महत्व को भी भूल जाता है। नास्तिक होकर अपने मार्ग से भटक जाता है। हृदय पर भी चंचल मन का प्रभाव हो जाता है।

मनुष्य की आध्यात्मिकता में उच्च स्थिति का ज्ञान उसकी आत्मिक स्थिति, उसके अन्दर के अहंकार और अहम् भावना की स्थिति से होता है। आध्यात्मिक व्यक्ति अपने अन्दर अहंकार को जमने नहीं देगा क्योंकि अहंकार आध्यात्मिक उन्नति का बाधक होता है। उदाहरणार्थ राजा जनक एक महात्मा थे उनकी आध्यात्मिक स्थिति उस युग के अनुसार बहुत ऊंची मानी जाती थी। एक दिन

उन्होंने यह अनुभव किया कि इतनी अधिक उन्नति प्राप्त कर लेने के पश्चात भी सूक्ष्म रूप में मन के विष का प्रभाव अहंकार के रूप में विद्यमान है। इसलिये उन ज्ञानी पुरुष ने इस विष के प्रभाव से बचने के लिये प्रण किया जो मुझे एक रकाब से दूसरे रकाब तक पहुंचने का ज्ञान करा देगा। उसे ही वह अपना सद्गुरु स्वीकार करेंगे। ऐसा उन्होंने इस भय से किया कि यह अंहकार का विष उनकी आध्यात्मिक स्थिति का खून न कर दे और उनके वर्षों का परिश्रम व्यर्थ न चला जाय। क्योंकि उनको अपना मन अपने में ही प्रतीत होता था उसके हृदय पर ईश्वर की छाप उतनी गहरी नहीं थी जो उनके मन को ईश्वर में लीन कर सकें। वह उन्हीं को अपना गुरु स्वीकार करने को तैयार थे जो उनके हृदय को ईश्वर के प्रभाव से इतना प्रभावित करदे कि उनका हृदय अपना न रह कर ईश्वर का हो जाय। जिससे वह अपने शरीर, हृदय के व्यक्तिगत लगाव से स्वतन्त्र हो जायें।

राजा जनक का गुरु अष्ट्रावक्र से परिचय हुआ जो शारीरिक रूप से आठ जगह से टेढ़े थे। अर्थात् आठों अंगों को जीते हुए थे। उन्होंने राजा जनक की परेशानी समझ कर ज्ञान देने का निश्चय किया। उन्होंने राजा को ज्ञान देने के लिये उनसे गुरु दक्षिण में उनसे वह चीज मांगी जो राजा की अपनी हो। राजा ने राज-पाठ, धन-दौलत, स्त्री, बच्चे आदि सब को देने का प्रयास किया। पर गुरु जी ने कहा कि इन सबमें से कोई भी चीज आपकी अपनी नहीं है। दूसरे के कहने से और अपना अधिकार समझ लेने से तू सब को अपना समझ बैठा है। मुझे तो वही वस्तु चाहिये जो केवल तेरी हो। तब जनकजी हाथ जोड़ कर बोले आप ही बतायें कि मेरा अपना क्या है, मेरे विचार से मेरा मन और हृदय ही मेरा है उसे ही मैं आपको सौंप रहा हूं। इस पर गुरु जी ने कहा कि अब किसी चीज का विचार मन से तुम नहीं कर सकते हृदय और मन मेरा है इस पर मेरा अधिकार है। इस कारण इन दोनों का प्रयोग तुम नहीं कर सकते। राजन यह सुनकर सोच व मौन अवस्था में डूबने लगे। जहां वह कुछ सोचते तुरन्त ही उनको गुरु के शब्दों का ध्यान आ जाता। इस तरह वह शून्य रहने का प्रत्यन्न करने लगे धीरे-धीरे यह शून्यता की अवस्था समाधि, महा समाधि की ओर ले गयी। राजन

में किसी चीज के प्रति लगाव व मोह, स्नेह आदि न रह गया, अंहकार, अहम् सब समाप्त हो गया। तो गुरु जी ने कहा राजन तुम अब उचित राह से राज पाठ करो। जिसे तुम गलती से अपना समझ बैठे थे वह तुम्हारा नहीं था तुम्हारा तो जो कुछ था अब इस फकीर का हो चुका है। अर्थात तुम अपने हृदय और मन व राज्य की देखभाल एक फकीर की धरोधर समझ कर करो और फकीर की तरह रहो। ऐसा सुन कर राजा जनक के ज्ञान चक्शु गुरु जी ने खोल दिये। उनका भ्रम-अहंकार सब गायब हो गया वह अपने अस्तित्व की वास्तविकता को पहचान गये और विदेह गति की मान्यता को प्राप्त किया।

उपरोक्त कथा मनुष्य को यह विचार करने पर मजबूर कर देती है कि हमारा इस संसार में कुछ नहीं है अपने, हृदय और मन के सिवा, वह भी जब तक हमारा शरीर है तब तक। क्योंकि शरीर वह भी ईश्वर का अंश है। उसे ईश्वर में मिलना ही मानव जीवन की सफलता है। इस कारण सांसारिक सारे सम्बन्ध कार्य सब ईश्वर के दिये कार्य हैं जिन्हें अपना फर्ज समझ कर करते जाना चाहिये। लगाव तो केवल अपने गुरु या मालिक से ही रखना चाहिये। प्रेम, विश्वास और भक्ति मार्ग को अपनाकर ही मनुष्य एक अच्छा मानव बन सकता है। तभी उसे मानसिक शान्ति और सुख प्राप्त हो सकता है। हृदय में सतनाम को धारण करने से मनुष्य के अन्तर में सदगुरु से निरन्तर निष्ठापूर्वक सतसंग चलता रहे तो, मनुष्य असलियत की वास्तविक अवस्था पर पहुंच सकता है। जितना अधिक हृदय को निरन्तर अभ्यास से अभ्यासित किया जाता है, उतना ही अधिक स्वच्छता, व पवित्रता का प्रकाश उसमें आध्यात्मिकता की अवस्थायें प्रकट करता हैं। जिनका अनुभव साक्षात्कार कहलाता है। अपने व्यवहार, अपने कदमों पर दृष्टि रखना आध्यात्मिक व्यवहार कहलाता है। यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, मानसिक, विचारात्मक भावनाओं को महत्व न दे। तभी आध्यात्मिक उन्नति की सम्भावना है। साथ ही आध्यात्मिकता के लिये हृदय की सफाई पर ध्यान देना भी आवश्यक है। गुरु के द्वारा दी गयी प्राणाहुति हृदय पर अपना प्रभाव डालती है जिसके कारण प्रत्येक प्राणी अपने हृदय, व्यवहार, विचार

आदि के परिवर्तन होने का अनुभव करता है। हर अभ्यासी को मालिक की दया, कृपा पर पूरा विश्वास रखते हुये परमात्मा का ध्यान हर समय करते रहना चाहिये।

हर व्यक्ति को अपने गुरु, मालिक का ध्यान सोते-जागते संसार का हर कार्य करते हुये करते रहना चाहिये। हमें उनके ध्यान में इतना डूबना चाहिये कि मनुष्य अपने अस्तित्व को भी भूल जाय। जब मनुष्य के हर कार्य में परमात्मा का प्रभाव नजर आने लगे तो मनुष्य दुःख सुख के अन्तर को भी अनुभव न कर सकेगा। ऐसी दशा आने पर मालिक पर प्रेम, श्रद्धा, अटल विश्वास, भक्ति, मनुष्य को मालिक के और निकट लायेगी।

मालिक की निकटता आने पर मालिक की दया कृपा, प्रेम स्नेह की वर्षा होने लगेगी। मनुष्य को पहले आत्म साक्षात्कार करना होगा, उसके पश्चात् ईश्वर साक्षात कार संभव होता है। ईश्वर प्राप्ति इसका अलग चरण है, ईश्वर प्राप्ति सबसे बड़ी निधि है। यह निधि अमूल्य है यह केवल प्रेम, श्रद्धा, विश्वास व भक्ति से ही प्राप्त की जा सकती है। परमात्मा को पाने के लिये मनुष्य को, अपने अस्तित्व, शरीर, आत्मा सबको भूल कर, हर पल परमात्मा का ही ध्यान करना होगा। लाला जी के शब्दों में:- "प्रेम व अनुराग इस कदर, वेग से कायम व मजबूत हो कि उसी मालिक पर भरोसा-यकीन, सब्र व शुक्र और रजा व तस्लीम की अवस्था पैदा हो जाये। जब तक आन्तरिक लगन का शब्द प्रेम के साथ कायम नहीं होता तब तक ये अवस्थायें व गतियां अन्तर में पैदा नहीं होतीं।" अतः सबसे बड़ी चीज ईश्वर के प्रति प्रेम है आध्यात्मिकता के साथ ईश्वर प्रेम का तार ऐसा जुड़ा रहे कि हर पल हर सांस, हर काम, हर समय हृदय की लगन परमात्मा को न बिसराये। मालिक के सिवा किसी से न कोई वास्ता हो, नाही किसी पर कोई भरोसा ही हो। जीवन में जो कुछ भी हो उसे मालिक की इच्छा मान कर अपने आध्यात्मिक मार्ग पर चलते जाना चाहिये। वास्तव में अगर कोई व्यक्ति हृदय पर ध्यान गुरु के आश्रित रहकर करे तो खुद ब खुद खुदा को देखने या उसके सामने हाजिर होने की स्थिति आ जाती है।

निशाते जिन्दगी का यों बसर होना।
निशाते जिन्दगी से जिन्दगी में बेखबर होना।।

मनुष्य को एक आध्यत्मिक स्थिति पर पहुंचने के पश्चात प्रसन्नता या दुःख की भावना में काफी परिवर्तन आ जाता है। वह एक समय पर किसी के आने पर न प्रसन्नता का अनुभव करता है और नाही किसी के बिछुड़ने पर दुःख का भी अनुभव नहीं करता वरन वह ईश्वर की इच्छा को सब कुछ मान कर ईश्वर के ध्यान में व्यस्त रहता है। सांसारिक कार्यों को ईश्वर का दिया समझ कर शुद्धता का ध्यान रख कर कार्य करता है। मनुष्य को शुद्धता के साथ सेवा भाव को भी नहीं भूलना चाहिये ताकि मालिक की दया व कृपा से उसकी आध्यात्मिकता में उन्नति हो सकेगी। सभी कठिनाई परेशानी मालिक की दी हुई समझ कर उसे धन्यवाद देते हुये सहने से ईश्वर की कृपा दृष्टि मनुष्य की सहन-शीलता को बढ़ा देती है। मालिक के सामने अपने हृदय को प्रस्तुत करते समय अपने हृदय में प्रेम, श्रद्धा, स्वच्छ व शुद्ध हृदय को प्रस्तुत करना चाहिये। मालिक के दरबार में ऐसे बन्दे ही आदर पाते हैं जो दुःख और सुख में भी मालिक को हृदय से धन्यवाद देते हैं। ऐसे बन्दों को मालिक आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करता है। उनकी ईश्वरीय लगन के बदले मालिक को जो जितना चाहता है उसी की चाहत के अनुसार मालिक भी उसे आदेश देते हैं। जो अभ्यासी कष्ट और परेशानियों में भी मालिक के भक्त और प्रेमी बने रहते हैं उस पर मालिक की कृपा दृष्टि अवश्य होती है। इस कारण मनुष्य को जो भी कार्य करना हो उसे नेक नियती और सेवा भाव के विचार से करे तो यह आवश्यक है कि दया व कृपा से उनमें आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। यह अनोखा मार्ग है जहां हर कदम पर ऐसी दुशवारियां व कठिनाइयां आदि आती रहती हैं जो अपने अहम् और अहंकार की महत्ता को तय कर शुद्ध लोचदार व मुलायम बना देती है। जिससे सहन शक्ति, शान्ति और प्रेम व निष्ठा का अभ्यास हो जाता है।

मनुष्य का व्यक्तित्व शरीर और आत्मा के मिश्रण का परिणाम है। दूसरे शब्दों में असार और सार का मिश्रण होने पर मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण

होता है। शरीर और आत्मा में अनगिनत रूप में परिवर्तन समय-समय पर होते रहते हैं, सार का अर्थ आत्मा से या आत्मिक शक्ति से होता है और असार का अर्थ मानव शरीर और उसके अनेक अवयवों से होता है। अगर मानव साधरण व्यक्ति है तो सांसारिक प्रभाव में शरीर की प्रधानता रहती है और अगर व्यक्ति आध्यात्मिकता प्रधान होता है तो सार अर्थात् आत्मिक प्रभाव उस पर अधिक होता है। एक की प्रधानता दूसरे के प्रभाव को उतनी मात्रा में कम कर देती है। यह तो प्राकृतिक नियम है कि जब एक का प्रभाव कम होता है तो हवा का रूख या प्रभाव स्वयं दूसरी ओर हो जाता है। मानव को अशान्ति के समय ईश्वर पर प्रभाव (ध्यान) लगा कर समय काट लेना चाहिये। इससे उसे शान्ति के साथ सुख का अनुभव होगा। जितनी मात्रा की अशान्ति होगी उतनी ही दृढ़ लगन से हृदय को ईश्वर का ध्यान करना होगा। ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा व भक्ति भाव की दृढ़ता को बल देते हैं। यह बल दुःख के अनुभव को कम कर सुख शान्ति का वातावरण पैदा करता है। दुःख की अधिकता से जो ग्रन्थि बन जाती है उसको निकालने के लिये उतनी शक्ति से उपाय करना चाहिये। इसी दृढ़ता और शक्ति से सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करना पड़ता है। और ऐसे समय में अपनी बुद्धि का प्रयोग करके हमेशा संतुलित रहने की कोशिश करनी चाहिये। कठिनाई आने पर घबराना नहीं चाहिये। चाहे कितनी बड़ी कठिनाई सामने आ जायें। मानव को हिम्मत और बुद्धिमता से काम निकालना चाहिये। इस स्थिति में आत्मा और शरीर दोनों प्रभावित होते हैं। इस कारण इस स्थिति में ईश्वर पर भरोसा रख कर ध्यान लगाना चाहिये अपने विश्वास की पकड़ को मजबूत बनाये रखना चाहिये। अगर जरा भी विश्वास की पकड़ ढीली पड़ी तो मानव की प्रार्थना बे असर हो जाती है। मालिक पर विश्वास की कड़ी जितनी दृढ़ होगी उतनी ही मनुष्य की प्रार्थना का असर मालिक को प्रभावित करेगा। मालिक की सहायता मिलने पर उसका एहसानमन्द होना चाहिये। और शरणागति भाव से मालिक के चरणों में नत मस्तष्क रहे और हर समय मालिक और अपने गुरु के प्रेम सागर में डूबे रहने का प्रयत्न करें। क्योंकि ईश्वर के प्रेम सागर में डूबकर ही प्राणी इस भवसागर

से तर सकता है। ईश्वर प्रेम व गुरु प्रेम के सागर में डूब मरना ही अपना परलोक सुधारना है।

ओछे जल चले रह गए, चले कदम दुई चार।
बूढ़ मरे जो दास गरीबा, सो ही पल्ले पार।।

ईश्वर महान है, उसकी दया, कृपा व्यक्ति पर हर समय रहती है। चाहे मनुष्य किसी भी दशा में हो। ईश्वर की कृपा के लिये हमें उसका ऐहसानमन्द रहना चाहिये। और हर पल परमात्मा की शरण में रहने का अवसर मिले यही प्रार्थना करनी चाहिये। जिससे मनुष्य में परमात्मा के लिये पवित्र प्यार, श्रद्धा, विश्वास भक्ति का भाव, इन्सानियत व हृदय को सत मार्ग पर दृढ़ रखता है। मनुष्य का मालिक के प्रति प्यार, प्रेम, स्नेह एक पवित्र आत्मिक भाव है। जिसका सही अनुभव मनुष्य के व्यवहार से ही पता चलता है। प्रेम और प्यार के भाव के साथ शर्म और हया का होना ही हृदय की पवित्रता को दर्शाता है। जीवन के हर मामले हृदय और आत्मिक दायरे में जो भी कार्य या व्यवहार आते हैं वह सब किसी न किसी भावना से ही प्रभावित हुआ करते हैं। सांसारिक विश्राम व कठिनाईयां सम्मान व अपमान आदि सब अदलती, बदलती व सत पुरुषार्थ में बाधक होती हैं। मानव को सदैव सावधान रह कर ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर चलना चाहिये। पूरे ध्यान से शान्त मन से अपने गुरुदेव पर प्रेम व विश्वास रखना चाहिये। अपनी देखभाल करके दूसरे की भी सेवा करे और परमार्थ की कमाई करें। यह मानव का मानवीय कर्तव्य है कि किसी को दुःख परेशानी में देख कर उसकी सेवा या सहायता करें। और उनकी भलाई की प्रार्थना ईश्वर से करें। स्वार्थी मानव समाज की सेवा नहीं कर सकते। मनुष्य के अच्छे कार्य, परमार्थ, धर्म, ईश्वर अराधना, आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होते हैं। अच्छे कार्यों के करने से मनुष्य सुख ईमानदारी के मार्ग पर चल पड़ता है। मानव को संभालने और गृहण शक्ति को बढ़ाने के लिये अपने हृदय रूपी पात्र को साफ करके खाली करना पड़ता है, व जीवन को साधना व वैराग से बांधकर पवित्र बनाना

पड़ता है। कबीर दास जी के विचार:-

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
शीश दिये यदि हरि मिलें, तो भी सस्ता जान।।

अर्थात् मनुष्य का यह तन विष की बेल के समान है और गुरु जी अमृत की असीम निधी हैं। यदि शीश देकर ईश्वर प्राप्ति हो जाय तो यह बहुत ही सस्ता सौदा है।

यह संसार, मानव का एक अंग है दोनों एक दूसरे के पूरक है। अनेक मानव से संसार बनाता है और संसार में ही रह कर मानव अपना जीवन सफल या असफल बनाता है। दुनियावी सम्बन्ध और रिश्तेदारी वास्तव में धोखा ही धोखा है। आध्यात्मिक रिश्तों में अधिक दृढ़ता वास्तविकता है। परमात्मा की असीम कृपा से मनुष्य को आध्यात्मिकता की उच्च स्थिति की प्राप्ति अपने बृह्मलीन सदगुरु की कृपा से हो सकती है। इस लिये मनुष्य को दीक्षा प्राप्त करने से पूर्व-श्रद्धा, विश्वास और भक्ति को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

श्रद्धा-अपने आप पर अपना कुछ भी अधिकार न मानकर अपने सद्गुरु का सेवक बनकर रहना और अपने हर कार्य की खबर मालिक को देते रहना।

विश्वास-भक्ति-मालिक या गुरु से जो भी आज्ञा मिले उसे पूरे श्रद्धा विश्वास, भक्ति से करना। हम सब मनुष्य ईश्वर की सन्तान हैं, अपनी सन्तान का सभी भला चाहते हैं, इस कारण मालिक भी अपनी सन्तान की भलाई की ही सोचेगा। इस कारण मालिक द्वारा दिया आदेश अपनी भलाई के लिये ही होगा। यही सोच कर आदेश का पालन करना चाहिये।

एक जन्म गुरु भक्ति करे, दूसरे में सतनाम।
तीसरे में गति मुक्ति पद, चौथे में निज धाम।

मनुष्य का जन्म ही ऐसा है जिसमें मनुष्य रूप में प्राणी बुद्धि की सहायता

से मोक्ष पाने में सफल हो सकता है। इसके लिये मनुष्य को गुरु भक्ति करके सतनाम को प्राप्त करना चाहिये। इस जन्म में यदि मुक्ति की गति प्राप्त हो गयी तो निज धाम अर्थात मोक्ष को प्राप्त करना भी आसान हो जायेगा जो मनुष्य जीवन का निजी या वास्तविक धाम है।

गुरु समरथ सर पर खड़े, कहा कभी तोहे दास।
रिद्ध सिद्ध सेवा करें, मुक्ति न छोड़े साथ।।

यह दर्दे दिल ही है, जिससे कि उसको पाते हैं।
खुदा भला करे उनका, जो दिल दुखाते हैं।।

बनय सज्जादा रंगीकुन गरत पीरे मूगां गोयद।
कि सालिक नेखबर न बूंद ज रहा ही रस्म मंजिल हा।।

अगर इस शेर का अध्ययन गूढ़ रूप से किया जाय तो इसका अर्थ होता है कि मानव या एक अभ्यासी जो गुरु का वास्तविक भक्त है तो वह अपने गुरु के हर आदेश को सर आंखों पर रख कर पूरा करेगा। वह, गलत, सही, उचित अनुचित किसी की परवाह नहीं करेगा वह तो गुरु का आदेश है। गुरु ही मानव को इस अन्धकारमय जीवन को सही मार्ग पर ले जा कर उचित स्थान अर्थात् अन्धकार से रोशनी की तरफ ले जाता है। ईश्वरीय प्रकाश की किरण के दर्शन और धीरे-धीरे उस प्रकाश की रोशनी में अपने अस्तित्व को भुला कर मिल जाने का मार्ग दर्शाते हैं सच्चा गुरु जब मानव बीयाबान सांसारिक राहों में भटकने लगता है तो हाथ का सहारा देकर महान गुरु अपने शिष्य को भटकने से बचा लेता है। और उसको उसकी असली मंजिल तक पहुंचाने में सहायक होता है।

यदि मानव अपने गुरु के बधनों को जरा ध्यान से, सत्य भावना से विचार करें तो, उसे इस बात का ज्ञान हो जायेगा कि जिस व्यक्ति को जितना अधिक अपने सद गुरु से प्रेम होता है, और जितना अधिक अटल विश्वास होता है उसी मात्रा में उसे आध्यात्मिकता के मार्ग में उन्नति मिलती है। प्रेम वाकई कोई दिखावे की चीज नहीं है फिर भी यह प्रकट हुये बगैर नही रह पाता। प्रकाश कितनी भी

परतों के पीछे हो फिर भी झलक पड़ता है। परमात्मा की असीम कृपा से यह गुरु की शरण में आने से जीवन का सुन्दर दिव्य स्वरूप बनने लगता है जिससे पिछले जन्मों के संस्कार कटने प्रारम्भ हो जाते हैं।

यह तो मन है एक ही, चाहे जहां लगाय।
कै सेवा गुरु तार कै, या तू विषम कमाय।।

मानव का मन चंचल है, इस कारण उसको संयम में रखने के लिये-वैराग्य, आध्यात्मिक साधन की आवश्यकता होती है। वैराग्य साधना आध्यात्मिकता में साधना दोनो काफी मुश्किल प्रतीत होते हैं। प्रेम और प्यार की भावना ही साधन और वैराग्य को सिद्ध करने में सहायक होते हैं। यह दुनियां कर्मों की खेती है जैसा मानव बोता है वैसी ही खेती वह काटता है। जहां पर प्रेम और प्यार का अच्छा बीज बोया जाता है वहां सुन्दर ज्ञान और प्रेम की अच्छी पैदावार होती है। हर चीज का अपना गुण होता है वही उसकी पहचान होती है। जैसे प्रेम-प्यार भी एक भावना है उसको भी व्यवहार से ही समझा जा सकता है, जहां आध्यात्मिकता का बीज पड़ता है वहां ज्ञान और भक्ति का प्रभाव होता है और जहां सांसारिकता का बीज पड़ता है वहां सांसारिक आनन्द, सुख का महत्व अधिक होता है। (१) प्यार, प्रेम के व्यवहार में शर्म, दया, अनुशासन, अद्वैवता, मान-मर्यादा आदि सब शामिल हैं। (२) खौफ में भय और अहंकार का त्याग आता है। (३) सार में हर प्रकार की सेवा भाव, त्याग अर्पण आदि आते हैं और (४) इस्तकलाल में हिम्मत, दृढ़ता, सहन-शीलता आदि आते हैं। इन चारों प्रकार के व्यवहार से एक मानव को मापा जा सकता है कि उसके व्यवहार में इन चारों के गुण कितने हैं जो उसे प्रभावित करके इसके व्यक्तित्व का निर्माण कर रहे हैं। ईश्वर या अपने गुरु के प्रेम, प्रेम की सारी विशेषतायें मानव के व्यवहार में झलकनी चाहियें। तभी हम उसे सच्चा गुरु भक्त कह सकते हैं।

गीता, महाभारत के युग की ऐसी पुस्तक है जिसमें कर्म धर्म, कर्तव्य आदि भक्ति प्रेम पर कृष्णजी के अच्छे उपदेश हैं। उन्होंने एक स्थान पर गीता में कहा है जो जिसकी अराधना करता है या हृदय में जिसको बैठा लेता है उसे ही पाता

है। जो मानव कृष्णजी को पूजते, भजते या मुझसे प्रेम करते हैं वह उनको ही पाते हैं। एक स्थान पर कृष्ण जी ने कहा कि हे मानव तू सबको छोड़ कर मेरी शरण में आ जा, तेरा कल्याण हो जायेगा।

सुपुर्दम ब तू माययें खेशरा।
तू दानी हिमाब ओ कम ओ बेशारा।।

अर्थात जब मैंने स्वयं को तुम्हारे हाथों पूरी तरह सौंप दिया तो हमारा कुछ रह ही नहीं गया तो हम चिन्ता किसकी करें। जब सब कुछ मालिक तुम्हारा है तो उसकी चिन्ता करना भी आपका ही कर्तव्य है। मेरे दुःख सुख, किसी चीज की कमी या अधिकता सब आपके हैं तो मुझे कुछ सोचकर दुःखी या सुखी होने की क्या जरूरत है। अपना हृदय तक अपना नहीं है यही सोचकर हृदय को भी खाली रखने का अभ्यास करना चाहिये। जिससे हर समय हृदय में गुरु व ईश्वर प्रेम की लगन भरी रहे। हर समय अपने हृदय पर ईश्वर प्रेम की छाप ही नजर आये और आध्यात्मिकता का ध्यान करने से यह और भी गहरी होती जाय जहां तक कि हृदय उसके प्रभाव से परिपूरित हो जाये। इसके साथ दो बातें आवश्यक हैं जिनका ध्यान हृदय में बना रहेः-

(१) नजर हर कदम
(२) होश हरदम

(१) अर्थात् व्यक्ति को अपने पैरों या कदमों पर पूरा ध्यान रखना चाहिये, साथ ही व्यकित अपना पूरा ध्यान या आन्तरिक दृष्टि, अपनी चाल व गति पर रहनी चाहिये कि हमारे कदम किस तरफ जा रहे हैं, नजर झुकी रहेगी तो कदमों पर ही टिकी रहेगी। पैरों के साथ-साथ अन्य इन्द्रियों पर भी नियन्त्रण धीरे-धीरे होता जाता है। आंख एक ऐसी इन्द्री है जिसके पड़ने से संस्कार हृदय पर जमते जाते हैं। संस्कार ही दुःख का कारण बनते हैं। अर्थात मानव की नजर सही सच्चे मार्ग पर ही रहनी चाहिये।

(२) अर्थात् हर पल अपने मालिक की याद में हृदय का डूबा रहना। क्योंकि मालिक का होने पर सांस हर पल अपने सच्चे मानों में प्रियतम ईश्वर को न भूलना। हर पल संसार में रह कर सांसारिक कर्तव्यों को पूरा करते हुये मन से अलग थलग रह कर मालिक के प्रेम व भक्ति में तन, मन व आत्मा से डूबे रहना साधना व अभ्यास हो सकता है। सारे सांसारिक सम्बन्ध धन-दौलत-मान-मर्यादा आदि सभी चीज दुनियांवी या सांसारिक हैं। सांसारिक प्रेम, व्यवहारों के आगे ईश्वर या गुरु का प्रेम कमजोर पड़ जाता है क्योंकि सांसारिक वातावरण मानव पर आध्यात्मिक वातावरण से अधिक प्रभाव डालता है। पर यदि मानव ने गुरु की शरण ले ली है तो उसको अपना परलोक सुधारने के लिए आध्यात्मिक वातावरण से अधिक प्रभावशाली बनाना चाहिये। धीरे-धीरे सांसारिक चीजों, संबन्धों से दूर हटते जाना चाहिये, और ईश्वर के निकट होकर दुःख सुख मान मार्यादा सब का ऐहसास समाप्त हो जाता है। जो प्रेम सांसारिक चीजों सम्बन्धों से कम होता जाता है और ईश्वर की ओर बढ़ता जाता है वह आध्यात्मिक है स्वयमेव धीरे-धीरे सांसारिक व्यवहारों का रंग फीका पड़ता जाता है और प्राणी पर ईश्वर प्रेम का रंग गहरा होता जाता है। अतः हमें अटल प्रेम, सेवाभाव, अर्पण त्याग सब गुणों को समेट कर आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलना चाहिये यही इस मार्ग की सफलता की कुन्जी है। यह भाव कितना सुन्दर है:-

किसी का हो के तुम रहना।
या किसी को अपना कर लेना।।

ईश्वर प्रेम और श्रद्धा के ही भूखे हैं। और उनके भक्त सदा अपने मालिक (गुरु) पर ही पूर्ण भरोसा रखते हैं। अपने भरोसे से कभी हटते नहीं हैं। उन्हें अपने गुरु में कोई कमी, कोई त्रुटि नजर नहीं आती। यह तो कटु सत्य है कि जिसको प्राणी जी-जान से प्यार करता है उसे उस जीव में कोई कमी या त्रुटि नजर नहीं आती यह सत्य ईश्वर या गुरु प्रेम के लिये भी लागू होता है। यही आदर्श प्रेम है। जो प्राणी वास्तव में अपने ईश्वर या गुरु के बिना रह नहीं सकता है वास्तव में प्रेमी और भक्त होता है। शंकायें मानव को मार्ग से भटका देती हैं। इनको हृदय

में भूलकर भी स्थान नहीं देना चाहिये।

यह मानव अच्छाईयों और बुराईयों का पुतला है पर वही महान और ईश्वर के निकट है जो अपनी त्रुटियों को मानकर पश्च्यातप करने से गुरु और ईश्वर दोनों माफ कर देते हैं। रात को सोने से पहले अपने गुरु या ईश्वर को ध्यान करके ही सोना चाहिये जिससे रात भर हृदय और मस्तिष्क पर उनकी ही छाया छायी रहे। अपने गुरु में विश्वास रखने वाले शिष्यों को या अभ्यासियों को ध्यान लगाने में कोई कठिनाई नहीं होती है। क्योंकि वो सब इसके अभ्यस्त होते हैं। सच्चे अभ्यासी या शिष्य अपने मालिक का ध्यान करके अध्यात्मिक उन्नति की परम सीमा या अन्तिम सीमा प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं, इस कारण उनके ध्यान में ही रहते हैं, अभ्यासी अपने गुरु को हृदय में बैठा कर सतत स्मरण में व्यस्त रहता है। उनकी निगाह हर समय हृदय पर रहती है कि वह किस अवस्था पर पहुंचे हैं, उनके मन की बागडोर ढीली तो नहीं हो रही है। इसका परीक्षण कुछ समय बाद अपने व्यवहार और प्रतिदिन के व्यवहार से किया जा सकता है कि उसमें कितना परिवर्तन आया है।

साधना अध्यात्मिक उन्नति के लिये महत्व पूर्ण अंग है पर मानव सांसारिक पचड़ों में फंसकर नियमित सत्संग और प्रति दिन की साधना भी नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति आने पर साधक को ईश्वर या गुरु को साक्षी मान कर अपनी समस्याओं को उनके सामने रखकर, प्रायश्चित करना चाहिये और फल का परिणाम ईश्वर पर छोड़ देना चाहिये। जब तक मनोवृत्ति की दशा में परिवर्तन उन्नति की ओर दिखाई पड़े तो साधन व अभ्यास में बिल्कुल ढील नहीं देनी चाहिये। वरना मन सांसारिक वासनाओं में उलझता जायेगा।

गुरु बेचारा क्या करे, जो हृदय भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़ा, तो भी बूढी न कोर।।

सतगुरु, सतनाम, सत संग, का महत्व पूर्ण स्थान साधना और अभ्यास में होता है। और इन तीनों की साधना प्रेम से ही पूर्ण हो सकती है। सतसंग के लिये

कम से कम सतसंगियों की आवश्यकता होती है अधिक तो कितने भी हो सकते हैं। सत्य नाम अर्थात ईश्वर का नाम या गुरु का नाम लेना एक साथ सतसंग होता है।

यह तो मन है एक ही, चाहे जहां लगाय।
कै भक्ति कर तार कर, कै तू विषय कमाय।।

आध्यात्मिक उन्नति के लिये, विनम्र भाव से ईश्वर से प्रार्थना करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रेम से परिपूरित हृदय से ही प्रार्थना करनी चाहिये। कि हे मालिक तेरी सहायता से ही तेरी प्राप्ति सम्भव है, मुझे आप से पूरी सहायता की आशा है। आध्यात्किता में हृदय की सफाई सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि बिना सफाई किये अर्थात् हृदय पात्र को खाली करके ही अभ्यासी अपने गुरु की दी हुई प्राणाहुति द्वारा अपने पात्र को भरता है। इस प्रकार हृदय की सफाई से हृदय मालिक या गुरु के प्रेम से भर उठता है। जिससे अध्यात्मिक उन्नति शीघ्र होने लगती है, हृदय ईश्वरीय प्रकाश से भर जाता है। और अज्ञानता का प्रभाव हट जाता है। जिस प्रकार सूर्योदय से रात का अन्धकार हट जाता है। चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश नजर आता है। अर्थात् ईश्वरीय प्रकाश अज्ञानता के अन्धकार को दूर करके ज्ञान का प्रकाश फैलाता है।

जैसे काग जहाज पर, सूझे और न छोर।

यह संसार द्वन्द अवस्था की खेलती हुई सूरत के समान है इसके हर चक्कर व खेल में द्वन्द अवस्था का प्रभाव रहता है जो दुख चिन्ताओं व अशान्ति का रूप पैदा करती हैं। द्वन्द युक्त संसार एक ऐसे समुद्र के समान है जिसमें द्वन्दों रूपी लहरों के थपेड़ों, चक्करों में गोते खाता हुआ मालिक का अभ्यासी मालिक के प्रेम की पतवार को पकड़ कर अपनी मंजिले मकसूद तक पहुंच ही जाता है। यह संसार समुद्र के समान है जिसमें हर समय लहरे उठती रहती हैं। जिन से हर प्राणी प्रभावित होता रहता है। पर परम दयालु कृपालु गुरु जी की कृपा अगर प्राणी पर रहती है तो वह सब लहरों के थपेड़े सहन करने की शक्ति प्रदान कर

देता है। जब हृदय परमात्मा की याद में इतना अधिक डूब जाता है कि उसे चैन नहीं पड़ता तो समझना चाहिये कि अभ्यासी का एक कदम और परमात्मा की ओर बढ़ गया। जरा सी देर भी अगर मानव का हृदय मालिक के प्यार में तड़पता है तो उसे पल भर में ही परमात्मा की कृपा प्राप्त हो जाती है। ईश्वर केवल हृदय के भावों को ही पहचानता है जिसमें प्यार और विश्वास का नूर भरा रहता है। वास्तव में हृदय एक मान्स का लोथड़ा मात्र होता है। अगर वह बिगड या खराब हो जाय तो हृदय के विचार आदि बदल जाते हैं और अगर हृदय संभल जाय तो शरीर और विचार सब संभल जाते हैं। हमें सदा सतर्क रहना है कि हमारा हृदय मालिक के प्रति विश्वास व ईश्वर के प्रेम, पवित्र प्रकाश से पवित्र व स्वच्छ रहे। माया ऐसे रूप धारण करती रहती है कि बड़े ज्ञानी इसके मोह के चक्कर में फंस कर अपने मार्ग से भटक जाते हैं। इस हृदय की सुन्दरता ब्रह्म विद्या है जिसका मार्ग प्रेम व भक्ति है। हृदय का परम धर्म ईश्वरीय प्रकाश को प्राप्त करके स्वयं को व दूसरों को भी भव सागर में डूबने से उबारने के लिए प्रत्यन्न करना है। इस संसार का भव सागर का पुल हृदय ही है जिसके ऊपर से गुजर कर ईश्वर के निकट सुगमता से जा सकते हैं। इसी से दोनों तरफ की राहें निकलती हैं, अगर संसार में रहें तो सांसारिक धर्म दीन दुनियां के कार्यों के वशीभूत रहते हैं। अगर संसार के भव सागर से उस पार पहुंच गये तो ईश्वर के ध्यान में लीन होकर आध्यात्मिकता प्राप्त कर सकता है। अगर इधर सांसारिक भव में रहे तो दुःख की कल्पनाओं से घर ही रह जाता है। पर यदि मानव उधर पहुंचता है तो परम शान्ति, परम सुख और हमेशा मुक्ति की हालत में पहुंच जाता है। हृदय रूपी पुल की सहायता से ही व्यक्ति इस भव सागर को पार करता है, विचार शक्ति की सहायता से जितनी (Strong will power) मजबूत विचार शक्ति होगी उतना अधिक जल्दी मानव को अपने जीवन का लक्ष्य या वास्तविक घर में प्रवेश होगा। यही लक्ष्य प्राप्त करना मानव योनी का परम धर्म या कर्तव्य है।

इस संसार में रहते हुये मानव उलझनों और द्वन्द की अवस्थाओं में फंसा

रहता है दिन पर दिन वह बढ़ती जाती हैं। अतः अपने कर्तव्यों को निभाते हुए, शान्ति व ध्यान में हृदय लगाये रखना चाहिये। ऐसी समझ और ज्ञान मानव को ईश्वर कृपा, दया से अनुभव के द्वारा होती है। अपने स्वच्छ पवित्र विचारों, आन्तरिक, बाहरी साधनों को उचित रूप से प्रयोग करने से होता है। ऐसी स्थिति ईश्वर कृपा के आ जाने से मानव को सांसारिक कष्ट, संकट व अशान्ति, उचित मार्ग पर चलने से विचलित नहीं करते हैं। पर उन कष्टों, संकटों और अशान्ति का प्रभाव संसार में रहते हुए मानव को प्रभावित करता रहता है। यही अविचलित करने वाली अवस्था-शान्ति का प्रतीक है, इसकी प्राप्ति लगन से घबराये बगैर ही की जा सकती है। सतसंग, जितना अधिक हो, करना चाहिये। मन या हृदय को सतसंग का अभ्यास कर लेना चाहिये इससे जो अवस्थायें शान्ति व आनन्द की आती है, यही अनुभव व कृपायें हैं।

ईश्वर प्राप्ति का मार्ग इतना सहज नहीं है जितना मानव समझता है, ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में बहुधा विभिन्न बाधायें आया करती हैं परन्तु मालिक के प्रति सच्ची श्रद्धा विश्वास के बल से और प्रेम में सुख दुःख, शान्ति, अशान्ति को मालिक का दिया हुआ वरदान या प्रसाद समझ कर झेलना चाहिये। ऐसा करने से समय आने पर मालिक दया व कृपा मानव पर करते हैं, मालिक के प्रति प्रेम, प्यार की बेचैनी लगन मानव को मालिक के प्यार के प्रसाद से परिपूरित कर देती है, जो अमूल्य निधि है। सच्ची उन्नति का भेद मालिक के प्रति प्रेम व विश्वास की तह में छिपा है। सारी तपस्याओं का भी उतना प्रभाव नहीं होता जितना की प्रेम से टूटे हुए हृदय की मोहनी दिशा, फलती फूलती नजर आती है यह दशा मालिक अपने प्रेमी की सेवा और पवित्र विचारों के लिये देता है।

स्वामी सेवक एक मति, जो मति से मति मिल जाय।
प्रेम सहित सेवा उठे, गगन सगन ले जाय।।

सच्चे ईश्वर प्रेमी की राह में गम, दुःख, दर्द, मुसीबतें और जिल्लतें आदि रहती हैं। इनसे परेशान होने से कार्य नहीं बनता। मालिक अपने किसी न किसी

नेक बन्दे को अपना यन्त्र बनाकर उसकी सहायता से सच्चे प्रेमी की राहों के कांटे चुनवा लेता है। कुछ बन्दों को इस कार्य को करने में आनन्द आता है, ईश्वर के इस तरह के कार्यों को करने में उनको जीवन का सच्चा व सुन्दर स्वरूप दिखाई देता है। बुद्ध जी ने एक जगह कहा है- कि जिस चीज की जितनी कदर कमान मर्यादा व आदर, बड़ाई होती है वह उसी रूप में हृदय में प्रेम भरा हुआ होता है, और इसी प्रेम के कारण त्रुटियां मानव प्रेम में हो ही नहीं सकती क्योंकि सच्चा प्रेमी स्वयं को मालिक के अधीन और उसी पर अर्पण समझता है। जहां इन चीजों में कमी या अभाव होता है वहां तो गलतियां, त्रुटियां ही हुआ करती हैं। क्योंकि वहां प्रेम, भय सब धोखा ही धोखा होता है। जिसमें कोई न कोई गरज छुपी रहती है। अर्थात दोनों की तुलना असंभव है। सच्चाई कभी छिपी नहीं रह सकती है एक न एक दिन सामने आ ही जाती है। अतः मालिक के प्रति सच्चा प्रेम रख कर ही हम जीवन की वास्तविकता को समझ सकते हैं। जिससे जीवन के ध्येय को प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वर प्राप्ति का मार्ग ही सच्चे प्रेम, सच्चे विश्वास का मार्ग है। मालिक की शरण में जाकर प्रेम का आधार पकड़ने में ही मानव कल्याण है, कबीर जी के शब्दों में:-

सबसे भले हैं मूढ़मत, जिन्हें न व्यापे जगत गत।
नीच-नीच सब तर गए, सन्त चरण लवलीन,
जात मान अभिमान से, बूड़े सकल कुलीन।

यह कटु सत्य है कि एक भी बूंद मालिक प्रेम की हृदय पर पड़ जाती है, तो दुनिया की कोई चीज (भावना) उसे हृदय से निकाल नहीं सकती है। वास्तव में सत्य यानी ईश्वर की खोज व सत्य की प्राप्ति का सीधा मार्ग व आदर्श प्रेम व भक्ति है। जहां प्रेम और भक्ति की भावना बलवती हो जाती है वहां संसार की असफलता सामने होते हुए भी हृदय का ईश्वर प्रेम आत्मा को सुख दिया करता है। पूरे विश्वास श्रद्धा के साथ पवित्र भावना से कार्य आरम्भ करने से, मालिक अवश्य अपनी कृपा और दया की वर्षा करेगा। उन्नति और सफलता की सीड़ी प्रेम ही है। जहां प्रेम है वहां दुःख भी है पर दुखः भी सुख मालूम पड़ता है।

जितना घनिष्ठ प्रेम ईश्वर के प्रति होगा उतनी ही तीव्रता से ईश्वर की मेहर बरसेगी। जो कुछ भी मिले दुख या सुखः सबके लिये ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये। क्योंकि संसार के सारे कार्य ईश्वर के फजलों कर्म से होते हैं। जीवन की कसौटी पर परखने से पता चलता है कि ईश्वर सबसे प्यार करता है सब का शुभचिन्तक है। पर प्रेम, स्मरण और समर्पण के द्वारा हम अपने शुभचिन्तक को अपने निकट ला सकते हैं।

सात्विक विचार, पवित्र विचार, संत विचार आदि जीवन की सफलता की कुन्जी है।

दर्दे दिल तू ही बता राजे हकीकत क्या है।
परदये गैब में अहवाल छुपा रक्खे हैं।।

अपने सद्गुरु की सूरत को ईश्वर का अंश मानक प्यार, प्रेम से अपने विचारों में रख कर विचार शक्ति (Thought power) की सहायता से हृदय को मालिक के विचारों में व्यस्त करके उसी में डूब जाय तो एक दिन ऐसी स्थिति आ जायेगी कि मानव अपनी हस्ती को ही भूल जायेगा कि वह कौन है। वह हर समय हर जगह मालिक का ही नूर देखेगा, अन्त में एक स्थिति ऐसी आयेगी कि वह अपने हृदय में मालिक के सिवाय किसी और को न पायेगा। पर मनमत अभ्यासी मन की बातों में भटक कर कभी ऊपर उठेगा तो कभी नीचे गिरेगा। पर एक सच्चे अभ्यासी को परमात्मा पर से ध्यान हटाने का समय ही नहीं होता, इस प्रकार आध्यात्मिकता की उन्नति के मार्ग में जो घटना आती हैं उन्हें भी सच्चा अभ्यासी आसानी से पार कर जाता है। उसका जीवन अनुशासित, उच्च, पवित्र होता है, अन्य साधारण सांसारिक लोगों की अपेक्षा मानव हृदय शरीर है जाने-अनजाने अगर कोई त्रुटि हम से हो भी जाय तो प्रेम पश्चाताप से प्रार्थना करके हमें मालिक से मांफी मांग लेनी चाहिए। मालिक करुणा, प्रेम, भक्ति, श्रद्धा के भूखे हैं। क्षणभर में करुणा, प्रेम, भक्ति के आंसू मालिक के हृदय पर प्रभाव छोड़ देते हैं। आवश्यकता तो इस बात की है कि सांसारिक दिखावा छोड़ कर अपने अस्तित्व को भूल कर मालिक या गुरु के चरणों में अपने को अर्पित कर दें।

आधुनिक विज्ञान के युग में मानव जीवन का वास्तविक ध्येय तो यही है कि हृदय में मालिक के प्रेम का दीप जलाना, प्रेम, प्यार, निष्ठा, श्रद्धा से हृदय में आने से भक्ति की भावना का प्रारम्भ होता है। इसी से ज्ञान का उदय होता है। जो मानव जीवन की अमूल्य निधि है। किसी भी चीज का ज्ञान प्राप्त करना मानव में एक अच्छी स्थिति पैदा करता है। ज्ञान मानव को सुख दुःख का ज्ञान कराता है। ईश्वर के प्रति ज्ञान प्राप्त कर लेने से आनन्द व सुख का विस्तार होता है। पर ईश्वरीय ज्ञान से वंचित मानव दुःखों को जन्म देता है। अज्ञानता और वह उन्हीं में डूब जाता है।

यह दुनिया, भ्रम और दुविधाओं का दूसरा रूप है। इसके भोग में ज्ञानी अपनी तरह से सुख की भावना से भोगता है और अज्ञानी अपने विचारों से दुःखों का पहाड़ समझ कर भोगता है। ज्ञानी के विचारों में ईश्वर या मालिक का साथ रहता है। इस कारण कठिन से कठिन समस्या का समाधान हो जाता है। पर अज्ञानी स्वयं ही अकेले योग समझ कर भोगता है तो उसे कठिनाइयों का अन्त नजर नहीं आता।

इस संसार में ईश्वर के प्रति शुक्र गुजार रह कर ईमानदारी, पवित्र विचार की जिन्दगी बितानी चाहिये। तथा दूसरों के उत्तराधिकार या पवित्र विचारों को अनदेखा न करना चाहिये तथा ईश्वर के प्रति अटल प्रेम, श्रद्धा, विश्वास रखना चाहिये। मालिक की प्रेरणा से ही कार्य होते हैं पर उचित, अनुचित का ध्यान रखकर उन्नत कार्य को ईश्वर के प्रभाव की सहायता से करना चाहिये। अगर किसी कार्य में लाभ होता है तो घर में बरक्कत बढ़ती है। अगर कभी भोग के कारण लाभ नहीं होता अर्थात नुकसान होता है तो उसमें भी किसी न किसी रूप में कृपा या दया छिपी रहती है। जो मानव के स्वच्छ, पवित्र विचारों के कारण दूसरा ईश्वरीय लाभ का रास्ता निकल ही आता है। जिसे मानव का ईश्वर पर विश्वास बढ़ जाता है, देखा जाय तो सबसे बड़ा लाभ मालिक प्रेम और भक्ति है।

बन्दा वो क्या, जो तालिने मैला न हो सका।
कतरा वो क्या, जो माइले दरिया न हो सका।।

मालिक की प्रेरणा ही सच्चे ईश्वर भक्त का प्रेम होता है। मालिक प्रेरणा से प्रेम, भक्ति के अन्तर में दबे, छुपे संस्कारों को उभार देता है। जिससे मानव में ईश्वर प्राप्ति की ललक जाग उठती है और फिर वह बिना ईश्वर, प्रेम, भक्ति मिले चैन नहीं पाता हैं। यह भी एक कठिन कार्य है कि किसी प्रेमी भक्त को कैसे पहचाना जाए। न जाने ईश्वर प्रेम के दो आंसू कब चू पड़े और ईश्वर के हृदय को अपने भक्त के प्रेम में व्याकुल कर दें। और बड़े-बड़े हठ योगी, तपस्वी, ज्ञानी मालिक की दृष्टि के सामने ही न पड़े या उनकी साधना की कोशिश मालिक की तबज्जो को एक पल के लिये भी अपनी ओर न कर सकें। इसका एक ही कारण है, वह यह है कि मालिक केवल दुःखी, कोशिश से भरे हृदय से ही प्रभावित होते हैं, जिनका हृदय अपने प्रेम में चूर व दुःखी देखते हैं। उसी प्राणी को ईश्वर पसन्द करते हैं। जिस पर मालिक की कृपा दृष्टि पड़ जाती है, उसका स्वरूप, हृदय सब कुछ मालिक का हो जाता है।

वो मरतबा ही और है, फहमीय के परे।
हम जिस को पूजते हैं, वह अल्लाह ही और है।।

सत्संग अर्थात् सत्य का संग अर्थात ईश्वर का संग। जहां पर ईश्वर में लीन होकर उसी की बात हो तथा हर प्राणी अपने अस्तित्व को भूल कर उसी में खो जाये वही सत्संग है। वास्तव में जहां साधना के पवित्र विचारों के फलस्वरूप जीवन, हृदय व आत्मा से प्रभु का होकर रहता है। जो कुछ है अन्दर-अन्दर ही है, सब स्वयं में ही ढूढ़ना या पाना है और मालिक प्रेम की भावना के नशे में सदा ही आनन्द व शान्ति का अनुभव करते हुये अन्दर ही अन्दर खिंचे चले जाते हैं। यहां पर वास्तविक रूप का कोई महत्व या आकर्षण नहीं है।

मन मोरा पंछी हुआ, उड़कर चला आकाशा।
स्वर्गलोक खाली पड़ा, साहब संतों पास।।

◆ ◆ ◆

ध्येय

मनुष्य के जीवन का ध्येय यह कि ईश्वर में लय जो जाय और वहां पहुंच कर उसमें स्थित कर ले। यही उसका कमाल है यही ध्येय है, यही आदर्श है।

(महात्मा श्री रामचन्द जी)

ध्यान हृदय पर ही करे, और नाजिन्स और गैर आदमी और गैर सोहबत के नक्शा से दिल को साफ रखें। और ईश्वरीय प्रकाश के सिवाय किसी की तरफ ध्यान न करें। ध्यान और एकाग्रता के साथ दिल हाजिर रखने की तरफ पक्का संकल्प करें। संत और मालिक की तरफ से जान पहचान और लगाव हासिल करें। अपने आप को भेट कर उसी में खोजाने या लय हो जाने का प्रयत्न करें। और इसी आध्यात्मिकता के काम में अपने को मिटा देना। सबसे अधिक निकट रास्ता और वास्तविक पद तक पहुंचने का वास्तविक तरीका (जरिया) है।

कुछ नियम विशेष अभ्यासियों के लिये लिखे जाते हैं, जिनको अपने गुरु में पक्का या पूरा विश्वास है-

इस संस्था के सदस्यों को पूरा विश्वास मालिक, सद्गुरु पर होना चाहिये। मनुष्य को किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तो वह मांगता है सबसे, न मिलने पर निराश होकर बैठ जाता है। उसी प्रकार भाई-बन्धु नातेदार मित्र आदि सबसे निराश और ना उम्मीद होकर रहें। और अगर कोई सहायता कर दे तो उसके लिये ईश्वर को धन्यवाद दें कि ईश्वर ने ही उस व्यक्ति के मन में इस सहायता के लिये

विचार उत्पन्न किया। और उस मनुष्य के प्रति भी आभार प्रकट करें जिसने सहायता दी। उसका आभार इसलिये कि उसने ऐसी आज्ञा का पालन किया जो ईश्वर ने दी। उसे स्वीकार करके उसका पालन किया।

अपने से प्रत्येक बड़े का आदर तथा नमन नम्रता के व्यवहार से करें। अपने से छोटों के लिये प्यार रखें और यथाशक्ति उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करें। और उनके अपराधों को अनदेखा करके क्षमा कर दें। अपने समान व्यक्तियों के साथ प्रेम सहानभूति का उचित व्यवहार करें। और जो व्यक्ति अकारण ही विरोध या अनुचित विचार अपने मन में रखता हो उससे दूर ही रहने का प्रयत्न करना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर सब की सहायता करें। घृणा या हानि पहुंचाने का अथवा बदला लेने का प्रयत्न कदापि नहीं करना चाहिये।

दूसरों के दुर्गुणों को सबके सामने नहीं लाना चाहिये। यदि किसी का कोई भेद मालूम हो तो उस व्यक्ति की इच्छा बिना किसी के सामने भी नहीं लाना चाहिये।

अपने अपराधों को तुरन्त स्वीकार कर लेने में ही बड़ाई है। उसे अस्वीकार करने का हट करने में आपमान की सम्भावना होती है। दूसरों के दुर्गुणों को अनदेखा करने का प्रयत्न करना चाहिये। और स्वयं को दूसरों के दुर्गुणों से शिक्षा लेनी चाहिये। किसी के भी दुर्गुण की बुराई अपनी जिव्हा से नहीं करनी चाहिये। ऐसा भी हो सकता है कि वही दुर्गुण हममें से किसी से हो जाय, किसी त्रुटि के लिये बिना छानबीन किये दोषी नहीं ठहराना चाहिये। अपने मित्र, नातेदार, संतान किसी का भी कुकर्म या गलती करने पर साथ नहीं देना चाहिये। साथ देने से उसे पुनः दोष करने का प्रोत्साहन मिलेगा। उसे उचित-अनुचित का ज्ञान कराने का प्रयत्न करना चाहिये, यदि फिर भी वह अपनी त्रुटि को स्वीकार करने को तैयार न हो तो उससे अलग हो जाना चाहिये। निरादर किसी का न करना चाहिये। किसी का अपमान (निरादर) और बुराई, बुरे चाल चलन से, और अनुचित व्यवहार से होती है। झूठा वादा किसी से न करें। ऐसा वादा करने से (निरादर) होता है।

ऋण लेना सबसे अनुचित कार्य है, यदि वह दिखाने के लिये या वाह-वाही लेने के लिये लिया गया हो। ऋण आवश्यकता की नजाकत को देख कर ही लेना चाहिये। और अन्य खर्चों को रोक कर जिन को रोकना सम्भव है, धन इक्कठा

करके, ऋण अति शीघ्र वापस कर देना चाहिये। अगर ऋण मजबूरी में लेना पड़ता है तो ईश्वर भी उस व्यक्ति की सहायता करता है और ऐसी स्थितियां पैदा कर देता है कि ऋण शीघ्र से शीघ्र उतारा जा सके। जिससे ऋण लिया हो उससे मुंह नहीं छुपाना चाहिये। यह अनुचित व्यवहार है और व्यक्ति के चरित्र पर शक पैदा करता है।

नौकर से वही कार्य लेना चाहिये जिस काम को करने में स्वयं आप असर्मथ हों। ऐशो-आराम के लिये नौकर नहीं रखना चाहिये। मजदूर या नौकर की मजदूरी समय पर ही दे देनी चाहिये। उनको टालना अभद्रता है। अपने बच्चों को उचित अनुचित का ज्ञान कराना चाहिये और अपने जीवन में गुरु के महत्व का ज्ञान कराना चाहिये। गुरु के प्रति प्रेम, श्रद्धा विश्वास भक्ति का प्रदर्शन भी बच्चों के मानसिक प्रभाव के लिये आवश्यक है।

अपनी पत्नी को अपने विचारों के अनुकूल प्रेम और स्नेह से बनाना चाहिये पत्नी का परिवार में महत्व, सम्मान होना चाहिये। क्योंकि पत्नी के व्यवहार से सारे परिवार पर प्रभाव पड़ता है। जैसा आप व्यवहार दूसरों से चाहते हैं- वैसा आप स्वयं दूसरों से करें।

अपने समाज में रहते हुये सामाजिक सभाओं में भाग लेना पड़ता है। पर जहां मदिरापान हो और मांस आदि की दावत हो वहां जायें अवश्य सम्बन्ध बनाये रखने के लिये पर शीघ्र ही वहां उपस्थिति का अभास करा कर वापस चले आयें।

गुरु भक्ति के गानों में आनन्द लें पर अनुचित चित्त को आकर्षण करने वाले गानों से प्रेम भी न करें और आनन्द भी न लें।

यदि रिश्तेदार-सम्बन्धी ऐसे कार्य करने को विवश करें जो धर्म-समाज के लिये उचित न हो तो ऐसा न करके रिश्ते-नाते तोड़ दे। क्योंकि ऐसे रिश्ते, नातेदार कठिनाई के समय हाथ बटाने नहीं आते हैं, और ना ही किसी प्रकार की सहायता ही करते हैं।

छिप्रानविशष (नुक्ता चीनी) की आदत न डालें आक्षेप, अभद्र व्यवहार तानाकशी से व्यवहार करना अनुचित है। जो व्यवहार हर व्यक्ति के हृदय पर प्रभाव

डालते हैं। इस कारण हृदय पर अनुचित बातों का प्रभाव अमिट होता है। इस कारण इस प्रकार के प्रभावों से दूर रहें। अभद्र व्यवहार करके दूसरों के (फंक्शन) महोत्सवों का सत्यानाश न करें।

तथ्य यह है कि सतसंग का मार्ग साधारण जीवन, सहानुभूति विश्वास तथा ईश्वरेच्छा का मार्ग है। इसमें ईश्वर के ऊपर भरोसा करके प्राकृतिक नियमानुसार कार्य करना ही उचित है। सतसंगियों के चारित्रिक गठन के लिये नैतिक नियम और कर्तव्यों का पालन करना उतना ही आवश्यक है जितना कि एक व्यक्ति के लिये भोजन, पानी, सांस लेना आदि। जब तक किसी चीज का महत्व प्राणी को पता न हो तो वह उसे कैसे महत्त्व दे सकता है। इस का ज्ञान हमारी आध्यात्मिक संस्थाओं में कराना अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी अभ्यासी का चारित्रिक व्यवहार उसकी आध्यात्मिक संस्था के चारित्रिक गठन का प्रतीक होता है। इस कारण भाषण या उपदेश देना, सुनना ही आवश्यक नहीं है वरन उनको सुनकर अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में उतरना ही महानता है या एक अच्छे अभ्यासी का सच्चे अभ्यासी होने का प्रतीक भी है। इस कारण आध्यात्मिक उन्नति के लिये भी यह उतना ही आवश्यक है।

लालाजी के बताये नियमों कर्तव्यों की हर बात हमारे 'सहज-मार्ग' में बहुत महत्वपूर्ण माने गये हैं।

सत्संगियों या अभ्यासियों को सूर्योदय से पहले उठना चाहिये। शौचादि के पश्चात स्नान करना चाहिये यदि किसी कारणवश स्नान करना संभव न हो तो अपने शरीर को भलीभांति स्वच्छ करके स्वच्छ वस्त्रों को धारण करना चाहिये। अर्थात शारीरिक व वस्त्रों की सफाई का ध्यान रखना चाहिये।

जो अभ्यास हमारी संस्था के अभ्यासियों को करना बता रखा है उसको नित्य प्रतिदिन करना। अभ्यास का प्रारम्भ प्रार्थना से करना। हर अभ्यासी को गुरु द्वारा बताई गयी प्रार्थना याद होनी चाहिये और प्रार्थना के महत्व को भी समझना चाहिये।

सतसंग के लिये स्थान निश्चित होते हैं तथा दिन समय भी निश्चित होता है। वहां उस दिन, समय पर जाकर सतसंगियों के साथ सतसंग या ध्यान करना चाहिये।

यदि यह संभव न हो तो घर पर ही बैठ कर ध्यान करना चाहिये।

मानसिक, शारीरिक, स्थान आदि सभी प्रकार की स्वच्छता पर विशेष ध्यान रखना और रात्रि को सोने से पहले मालिक को वहां पर मौजूद जानकर बड़े विनम्र अर्पण के भाव से प्रार्थना करना। रात्रि ९(नौ) बजे विश्वबन्धुत्व को ध्यान रख कर ध्यान, प्रार्थना करना। यदि अभ्यास करने के लिये निश्चित समय न मिले तो सांसारिक कार्य नौकरी व्यवसाय आदि करते हुये समय निकालकर किसी भी समय अभ्यास कर लेना चाहिये।

हमारी सतसंग की संस्थाओं में शुद्धता पर ही बल दिया जाता है, वह चाहे शरीर की, हृदय की हो या स्थान, खान-पान किसी की भी हो। शुद्धता होनी चाहिये।

दूषित भोजन या सन्देहात्मक भोजन करना उचित नहीं है। भोजन यथाशक्ति शुद्धता से बना होना चाहिये। और भोजन करने से पूर्व अन्नपूर्णता अर्थात् ईश्वर का भी कुछ मिनट के लिये ध्यान धन्यवाद के साथ करना चाहिये। भोजन करने का स्थान भी स्वच्छ भोजन के समान शुद्ध व स्वच्छ होना चाहिये। भोजन साफ और खूब सफाई से बना होना चाहिये। उतना ही अभ्यासी को भोजना चाहिये जितना आवश्यक हो। जितनी भूख हो उससे थोड़ा कम ही भोजन करना चाहिये। भोजन करते समय कम बोलना ही अच्छा है। मादक वस्तुओं (मदिरा) आदि से बचाव करना चाहिये या दूर ही रहना चाहिये। इनसे मन की चंचलता बढ़ती है जो अभ्यासी को ध्यान लगाने में बाधक होती हैं।

एक अभ्यासी होने पर मनुष्य को मांस आदि त्याग देना चाहिये। यह भी मदिरा के समान मन की चंचलता बढ़ाते हैं। अतः स्वाद आनन्द लेने के लिये इनको न खाना चाहिये। पर हां अगर, वैद्य हकीम या डाक्टर द्वारा किसी बीमारी या कमजोरी के लिये इनका प्रयोग करना पड़े तो औषधि समझ कर ही इसे खाना चाहिये। सार्वजनिक भोजों में कम सम्मलित होना चाहिये केवल वहां ही जाना चाहिये जहां जाना आवश्यक हो और भोजन भी तभी गृहण करना चाहिये जब उस भोजन की स्वच्छता पर पूरा विश्वास हो। अपवित्र भोजन गृहण नहीं करना चाहिये। विवशता में भी कहीं भोजन गृहण करना उचित नहीं है। दिन में खाली नहीं रहना चाहिये।

काम न हो या काम से निपट कर अपने गुरु या ईश्वर सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिये। किसी भी व्यक्ति का दिल नहीं दुःखाना चाहिये। वह भी एक पाप है। अपनी जिव्हा से किसी की बुराई नहीं करनी चाहिये। चाहे सामने हो चाहे पीठ पीछे हो। औरों को त्रुटियों और अनुचित कार्यों का वर्णन सबके सामने नहीं करना चाहिये। किसी में त्रुटियों ढूंढ़ने का प्रयास भी अभद्र व्यवहार है किसी भी साथी, अभ्यासी किसी से भी अभद्र व्यवहार नहीं करना चाहिये। यदि किसी प्राणी को आप कष्ट में देखें तो उसकी अवश्य सहायता करें। दूसरों की सेवा ही मेवा है। किसी भी अभ्यासी को बुरे मनुष्य से घृणा नहीं करनी चाहिये। मनुष्य से घृणा न करें उसकी बुराई से दूर रहें। घृणा की भावना अभ्यासी के अन्दर रहना उचित नहीं है। घृणा का कार्य करने वाले अभ्यासी या व्यक्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करें कि उसको अच्छाई बुराई का ज्ञान करायें। किसी भी भिखारी को अनुचित शब्द न बोले, मीठे व नम्रता से जो भी कहना है कहें अगर कुछ देना हो तो प्रेम, प्यार से दें। यदि किसी को डांटना हो तो मधुर शब्दों का ही प्रयोग करें। क्योंकि १० कठोर शब्दों का प्रयोग प्रभाव नहीं डाल सकेगा जबकि २ मीठे मृदयालू शब्दों का प्रयोग प्रभावदायक होगा।

स्त्रियों और पुरुषों के बीच एक दूरी ही मर्यादा का प्रतीक है। जिसका प्रयोग हर अभ्यासी भाई बहनों को करना चाहिये। हर पुरुष को और स्त्री को अगर अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी से बात करनी हो तो अन्य किसी को साथ रखना चाहिये। इसी प्रकार स्त्रियों को भी गैर पुरुषों से बात करते समय तीसरे किसी को साथ रखना चाहिये। पराये धन, सम्पत्ति, पराई स्त्री पर कुदृष्टि न डालनी चाहिये। आवश्यकतानुसार साधारण स्वच्छ कपड़े पहनना चाहिये और आभूषणों का भी अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिये।

अपनी आय का कुछ भाग दान के लिये अवश्य निकालना चाहिये। जितना भी संभव हो। कुछ पैसा अपनी आय में से बचा कर हमेशा रखना चाहिये। जिसका प्रयोग पारिवारिक कष्ट या बीमारी आदि आने पर किया जा सके। अन्यथा यह पैसा अच्छे शुभ कार्यों में भी लगाया जा सकता है।

बड़ों का आदर, छोटों से प्यार, सतसंगियों से प्रेम व अच्छे लोगों से

मेल-जोल रखना चाहिये। जिन से मन न मिले उनसे दूर ही रहना चाहिये। किसी भी धर्म जाति गुरु आदि की निन्दा नहीं करनी चाहिये। यदि किसी धार्मिक संस्थापक अथवा अपने गुरु की किसी स्थान पर निन्दा हो रही हो तो उस स्थान को छोड़ देना ही उचित है। अपने बच्चों को अच्छी, उच्च शिक्षा भी देना चाहिये। कर्ज नहीं लेना चाहिये और अपने पैसे को भी ब्याज पर चला कर धन नहीं लेना चाहिये। यह अनुचित रूप से कमाया हुआ धन है। कठिन परिश्रम से कमाया धन ही उत्तम है। जुआ पैसे से खेलना मानसिक उन्नति के लिये अनुचित है।

किसी व्यक्ति या नातेदार की मृत्यु पर शान्त रहकर उसकी आत्मा की शान्ति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। मृत्यु के पश्चात जो भी संस्कार दसवीं, तेरहवीं आदि व्यक्ति करता है वह किसी के लिऐ भी लाभकारी नहीं है। इसके बदले पवित्रता व शुद्धता से भोजन बनाकर अपंग व गरीब व्यक्ति और बच्चों में बांटे वह ज्यादा उत्तम है। साथ ही दिवंगत आत्मा की मुक्ति के लिये ईश्वर व अपने गुरु से प्रार्थना करें। और अपनी हैसियत के अनुसार, वस्त्र, पात्र भोजन आदि का गरीबों व अपंग लोगों में दान करें। यह दिवंगत आत्मा और दान देने वाले व्यक्ति दोनों के लिये उचित या लाभदायक है।

हर अभ्यासी को अपनी चादर देख कर ही पैर फैलाने चाहिये। अपनी आय में मान मर्यादा से रह सकें इसी में हर मनुष्य की बड़ाई है। क्योंकि आवश्यकतायें मनुष्य की इच्छा के अनुसार ही बढ़ती हैं। अपनी आवश्यकताओं को अपनी आय के अनुसार सीमित करके मेहनत, परिश्रम की कमायी खुद खाये व अपने परिवार को खिलायें क्योंकि घर पर खर्च होने वाले धन का प्रभाव परिवार के हर प्राणी पर पड़ता है। इस कारण अपनी आय को देखते हुये आवश्यकताओं को सीमित करके हर प्रकार के तनाव से बचें। अपनी आय से बचत करके कुछ धन अवश्य रखें। जो समय बेसमय कठिनाईयों या परेशानी आने पर या किसी भी प्रकार अपने तथा अपने परिवार पर खर्च करने को प्राथमिकता दें। आवश्यकता पड़ने पर किसी अच्छे काम जैसे दान, दक्षिणा भन्डारे आदि पर खर्च करना भी उचित है।

सतसंगियों की दिन चर्या :-

एक अच्छी संस्था के अभ्यासी होने के नाते भी हम सब की दिनचर्या ठीक

होनी चाहिये। जो कुछ कर्तव्य, नियम में बंधी होनी चाहिये यही बन्धन व्यक्ति को अनुचित मार्ग पर जाने या भटकने से बचा सकते हैं। सुनने पढ़ने देखने में यह बन्धन कठिन प्रतीत होते हैं। पर प्रतिदिन प्रयोग में आने पर हम सब उससे अभ्यस्थ हो जाते हैं।

प्रातः सूर्योदय से पहले प्रत्येक सदस्य को उठ जाना चाहिये। इसके पश्चात घर की सफाई तथा अन्य कार्यों में परिवार के सदस्यों के साथ हाथ बटायें। फिर नहा धोकर साध्योपासना सूर्योदय से पहले समाप्त कर लें। घर में एक स्थान साध्योपासना के लिये निश्चित कर लेना चाहिये वही पर, अपने ही आसन पर बैठ कर रोज ध्यान करना चाहिये। ध्यान करने के स्थान की सफाई आदि का भी सभी को ध्यान रखना चाहिये। पूजा या ध्यान का प्रारम्भ अपनी सहज-मार्ग की प्रार्थना से ही करना चाहिये। अपने अन्य सभी आवश्यक कार्य निपटा कर जलपान करें और साधारण जलपान के बाद अपने कार्य पर जाना हो या व्यवसाय पर चले जायें। जलपान, भोजन, शाम का जलपान और रात्रि भोजन का समय निश्चित होना चाहिये। साथ ही सोने का समय भी निश्चित होना चाहिये। घर के लड़के अपने आयु के अनुसार पढ़ायी या घर के कार्य करें। स्त्रियां बच्चियां भी सब मिल कर अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार कार्य मिल-झुल कर करें। जिस समय जो कार्य स्त्रियों को करना हो उनका हाथ घर की बेटियां बटायें। संध्या के समय सब परिवार के सदस्य बैठ कर ध्यान सम्बन्धी पूजा करें, सतसंग करें फिर रात्रि आठ से नौ के बीच भोजन करके कुछ टहल कर ईश्वर या अपने गुरु आदि की याद में प्रार्थना करते हुये निद्रा में मग्न हो जाये। अनुचित व्यवहारों से दूर रहना चाहिये। संसार के सारे अनुचित कार्य, व्यवहार, आदतें सभी आध्यत्मिक उन्नति की बाधक हैं इस कारण स्वच्छ, निर्मल वातावरण में रहने का हर अभ्यासी को प्रत्यन्न करना चाहिये जो हर तरह से अभ्यासियों के लिये लाभदायक है। रात्रि सदैव साड़े दस बजे तक सो जाना चाहिये और सुबह चार साड़े चार बजे तक जग कर अपनी दिनचार्या में व्यस्त हो जाना ही जीवन है।

(समाप्त)